नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 5 अंक 3
मार्च 2003 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

इराक पर अमेरिकी हमले का पुरजोर विरोध करो!

इराकी जनता के साथ क्रान्तिकारी एकजुटता प्रदर्शित करो!

• अग्रलेख

-दुनिया भर में अमेरिकी साम्राज्यवाद विरोधी नफ़रत की लहर।
-वियतनाम युद्ध के दिनों की यादें ताजा। भविष्य के पूर्व संकेत।
-हमला अमेरिका ही नहीं समूचे विश्व पूँजीवाद के लिए महंगा साबित होगा।
-सभी युद्धों और तबाहियों के मूल स्रोत साम्राज्यवाद को क्रान्तिकारी युद्ध द्वारा तबाह कर डालना ही एकमात्र विकल्प

दुनिया भर में लगातार जारी जबर्दस्त युद्धविरोधी प्रदर्शनों से आंखें मूंदते हुए जार्ज बुश और उसकी जंगजू मंडली ने इराक पर हमला बोल दिया है। अमेरिकी साम्राज्यवादी लुटेरों ने जब देखा कि फ्रांस, जर्मनी और रूस जैसे पश्चिमी देशों के उसके बिरादर इराक पर हमले में साथ देने के लिए कतई तैयार नहीं हो रहे और संयुक्त राष्ट्रसंघ के मंच से अपने मंसूबों पर ठप्पा लगाना किसी भी तरह मुमकिन नहीं तो वे तयशुदा योजना के अनुसार अकेले हमला करने पर उतर आये। दरअसल अमेरिकी साम्राज्यवादी अपनी व्यवस्था के अन्दरूनी संकटों से उबरने और दुनिया पर अपनी चौधराहट बरकरार रखने की बदहवासी में यह नहीं देख पा रहे हैं उन्होंने किस जलजले में पैर रख दिये हैं। हथियारों के सबसे बड़े जखीरे पर बैठे अमेरिकी लुटेरे अपनी बदगुमानी में इतिहास का यह सबक भुला बैठे हैं कि हथियारों के बड़े से बड़े जखीरे जनसंघर्षों के महासागर में डूब जाया करते हैं।

इतिहास की इससे बेशर्म और हास्यास्पद दलील शायद दूसरी न होगी कि दुनिया को आतंकवाद के खतरे से मुक्त करने और विश्व शान्ति की रक्षा के लिए अमेरिका ने इराक पर हमला किया है। इस बात को साबित करने के लिए सबूतों की एक-दो नहीं, लम्बी-चौड़ी फेहरिस्त गिनायी जा सकती है... कि अमेरिका सहित सभी साम्राज्यवादी हुक्मरान खुद आतंकवादियों के सबसे बड़े गिरोह हैं और अमेरिका उनका सरगना है। समूची बीसवीं सदी कातिलों के इन गिरोहों की खूरेजी और मानवता के खिलाफ किये गये उनके अपराधों की गवाह है। कौन नहीं जानता कि पूरी दुनिया को हथियार बेचने वाला सबसे बड़ा व्यापारी भी अमेरिका ही है और सभी साम्राज्यवादी देश हथियार बेचते हैं जिनसे दुनिया भर में युद्ध और आतंकवादी कार्रवाइयां होती हैं।

इराक के जनसंहारक हथियारों को नष्ट करने के नाम पर इराकी जनता का कत्लेआम रचने वाले अमेरिकी डाकुओं के पास इस बात का आखिर क्या जवाब है कि एक समय सद्दाम हुसैन को ईरान के खिलाफ लड़ने के लिए तमाम विनाशक हथियार और करोड़ों डालर की मदद क्या अमेरिका ने ही नहीं दी थी? हालांकि संयुक्त राष्ट्रसंघ के हथियार निरीक्षक दल को चप्पा-चप्पा छान डालने के बाद भी इराक के पास ऐसे हथियार जब नहीं मिले तो इसके बाद एकदम कठदलीली पर आमादा होकर बुश ने कहना शुरू किया था कि उसे पक्का पता है कि सद्दाम के पास ऐसे हथियार हैं जिन्हें उसने छिपा रखा है। इसके बाद जब हर मुमकिन कोशिश के बाद भी संयुक्त राष्ट्र संघ से वह अपनी मर्जी नहीं मनवा सका तो उसने इराक पर सीधे हमला बोल दिया।

यह सच्चाई अब जगजाहिर हो चुकी है कि इराक के पास जनसंहारक हथियारों का जखीरा होने का तर्क सिर्फ एक बहाना भर है। असल बात यह है कि यह लड़ाई खाड़ी क्षेत्र की तेल सम्पदा पर फैसलाकुन इजारेदारी के लिए लड़ी जा रही है। साथ ही कई और फौरी-दूरगामी राजनीतिक-सामरिक मकसद भी इसके साथ जुड़े हुए हैं। अमेरिकी साम्राज्यवादी समूचे पश्चिम एशिया के आर्थिक-राजनीतिक-सामरिक समीकरण को निर्णायक रूप से अपने पक्ष में मोड़ना चाहते हैं। इराक में बार-बार सत्ता-परिवर्तन करने की बुश की चीख-पुकार और युद्ध शुरू होने से पहले सद्दाम हुसैन को दोनों बेटों समेत 48 घण्टे के भीतर देश छोड़ देने के अल्टीमेटम से भी इसे साफ तौर पर समझा जा सकता है। अमेरिकी साम्राज्यवादी अच्छी तरह जानते हैं कि पश्चिम एशिया में उनके मंसूबों के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा सद्दाम हुसैन की सत्ता है। इस बाधा को हटाये बिना फिलिस्तीन मसले का हल भी उनके मनमाफिक नहीं निकल सकता। इसके साथ ही हमले का एक फौरी मकसद अमेरिका के भीतर लगातार बढ़ रही बेरोजगारी और सामाजिक असुरक्षा से भीषण रूप से असन्तुष्ट अमेरिकी अवाम का ध्यान भटकाना भी है, हालांकि हमले का यह बेहद गौण पहलू है।

इस बात के बिल्कुल साफ संकेत मिलने शुरू हो चुके हैं कि अमेरिकी हुक्मरानों की जंगजू नीतियां उलटवार साबित होने जा रही हैं। जार्ज बुश खुद अपनी जनता को हमले के घोषित मकसद के पीछे गोलबन्द करने में बुरी तरह नाकाम साबित हो रहा है। वाशिंगटन, न्यूयार्क ही नहीं अमेरिका के तमाम बड़े-छोटे शहरों में अमेरिकी अवाम तेल के लिए खून बहाने के अपने शासकों के इरादों के खिलाफ और इराकी जनता के पक्ष में लाखों की तादाद में सड़कों पर उतर आयी है। पेरिस, लन्दन, रोम, बर्लिन से लेकर यूरोप के सभी प्रमुख शहरों में भी यही आलम है। अमेरिकी पिछलग्गू टोनी ब्लेयर को खुद अपनी सरकार और पार्टी में जबर्दस्त विरोध झेलना पड़ रहा है। उसके कई मंत्रियों-सांसदों ने इस्तीफे तक दे दिये हैं। खाड़ी क्षेत्र में ही नहीं वरन एशिया-अफ्रीका-लातिनी अमेरिका के तमाम देशों में भी युद्धविरोधी प्रदर्शनों की बाढ़ सी आ गयी है।

इस समय पूरी दुनिया में अमेरिकी साम्राज्यवाद विरोधी नफरत की जो लहर दिखायी दे रही है वह वियतनाम युद्ध के समय जैसी स्थिति की ओर बढ़ती दिखायी दे रही है। वियतनाम पर अमेरिकी हमले के बाद 1967-68 में अमेरिका और समूचे यूरोप में फूट पड़े युद्ध-विरोधी आन्दोलन ने पूंजीवादी व्यवस्था विरोधी एक आम जनउभार की शक्ल ले ली थी। युद्ध विरोधी आन्दोलनों के साथ अमेरिका के भीतर रंगभेद विरोधी आन्दोलन, स्त्री आन्दोलन और अमेरिका-फ्रांस में जबर्दस्त

(पेज 6 पर जारी)

केन्द्रीय आम बजट 2003-2004

एक बार फिर पूँजीपतियों पर "रहमतों की बारिश"

(विशेष संवाददाता)

दिल्ली। वर्ष 2003-2004 का केन्द्रीय आम बजट पेश करने के बाद वित्त मंत्री जसवन्त सिंह यह दावा करते फिर रहे हैं कि उन्होंने "गरीबों के पेट में दाना और गृहिणियों के बटुवे में आना" देने का अपना वादा पूरा कर दिखाया है। लेकिन जसवन्त सिंह का यह दावा पूंजीपतियों के एक मक्कार मुनीम की लफ्फाजी के सिवा कुछ नहीं है। असलियत यह है कि जसवन्त सिंह ने भी मनमोहन सिंह-चिदम्बरम-यशवन्त सिन्हा की लीक पर चलते हुए देशी-विदेशी पूंजीपतियों पर "रहमतों की बारिश" की है। अपने बजट प्रस्तावों के जरिये उन्होंने मध्यवर्ग को झांसा दिया है और देश की गरीब मेहनतकश आबादी के साथ गन्दा मजाक किया है। यह अनायास नहीं है कि देश के सभी छोटे-बड़े पूँजीपति चुनावी साल के बजट से भी किलक रहे हैं।

जसवन्त सिंह ने वित्त मंत्रालय के अमले-चाकरों की मदद से जो बजटीय कवायद की है उसके पीछे मंशा सिर्फ यह थी कि किस तरह ऐसे प्रस्ताव तैयार किये जायें कि "उदारीकरण"-निजीकरण की नीतियों को जरा सा भी झटका न लगे और मध्यवर्ग को भरमाकर चुनावों में रिझाया जा सके। इसलिए सीधे-सीधे देशी-विदेशी पूंजीपतियों को फायदा पहुँचाने वाले प्रस्तावों के अलावा अनेक ऐसे प्रस्ताव भी किये गये हैं जो ऊपरी तौर पर तो मध्य वर्ग को फायदा पहुंचाने वाले दिखायी देते हैं लेकिन असल में इनका फायदा आखिरकार पूँजीपतियों को ही मिलेगा।

जसवन्त सिंह ने विदेशी पूँजी को लुभाने के लिए कई अहम नीतिगत घोषणाएँ की हैं। पहले सिर्फ 'कोर सेक्टर' में (यानी बुनियादी औद्योगिक क्षेत्रों में) ही सौ फीसदी विदेशी पूंजी निवेश की छूट थी। अब उपभोक्ता मामलों के क्षेत्र में भी सौ फीसदी पूँजीनिवेश हो सकता है। पहले इसकी सीमा सिर्फ पचास फीसदी थी। इसके अलावा अब बैंकिंग क्षेत्र में भी विदेशी पूँजीनिवेश की सीमा 74 फीसदी से बढ़ाकर 49 फीसदी कर दी गयी है। साथ ही बजट में अनेक ऐसे कदम उठाये गये हैं जिनसे घुमा-फिराकर विदेशी पूँजी को बढ़ावा मिलेगा और घरेलू बाजार में विदेशी उपभोक्ता मालों की आवक बढ़ेगी।

वित्तमंत्री महोदय "रोजमर्रे" के इस्तेमाल की कई वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क में कटौती का डंका बजाते हुए दावा कर रहे हैं कि इससे उन्होंने 'गृहिणियों के बटुवे में आना' भर दिया है। उत्पाद शुल्क की इस कटौती से छाते, रजिस्टर व लेखा पुस्तकें, चलने में सहायक छड़ी, साइकिल व उसके पुर्जे, खिलौने, बर्तन व रसोई की वस्तुएँ, चाकू, चम्मच व रसोई की मेज पर इस्तेमाल होने वाली अन्य वस्तुएँ, बिस्कुट, टॉफी, कोल्ड

(पेज 6 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

ऐसा भी करते हैं "कामरेड" लोग

लुधियाना में मजदूर यूनियन के नाम पर जितने भी धोखेबाज, धंधेबाज अपनी दुकानें सजाये बैठे हैं, उन सब को यहां पर 'कामरेड' ही कहा जाता है। ऐसे ही नकली कामरेडों के बारे में मैं कुछ बताना चाहूंगा। एक दिन मैं फैक्ट्री में काम कर रहा था। फैक्ट्री का नाम है – नेफ-नेफ शुभम निटवीयर। यहां का एक मजदूर ऐसे किसी यूनियन वाले को साथ लेकर फैक्ट्री आया था। इस मजदूर की तनख्वाह मालिक ने रोक रखी थी। मजदूर इस उम्मीद से यूनियन वाले को साथ लेकर आया था कि वह मालिक से पैसा दिलवा देगा। हमने देखा कि वह यूनियन वाला मजदूर को बाहर छोड़कर खुद मालिक के दफ्तर में चला गया। बाबू (मालिक) और उस 'कामरेड' में अन्दर कुछ गिटिर-पिटिर हुई (इस गिटिर-पिटिर का मतलब हर कोई समझ सकता है)। थोड़ी ही देर बाद मालिक के चमचों ने उस मजदूर को धक्के मारकर कारखाना गेट से बाहर कर दिया, जबकि वह 'कामरेड' अभी भी बाबू के दफ्तर में ही था।

बिगुल के दिसम्बर' 02 अंक में 'भागो नहीं, भाग्य को बदलो' शीर्षक के तहत मेरी चिट्ठी छपी थी। जिसे मैंने नेफ-नेफ शुभम निटवीयर के मालिक संजीव कुमार तक पहुंचा दिया था। इसे पढ़कर उसे बिजली का-सा झटका लगा। वह तुरन्त पड़ताल करने लगा कि यह किसका काम है। मगर उसके हाथ कुछ न लगा। नतीजा यह हुआ कि अगले दिन उसने सारे कारीगरों को बुलाकर उनका हिसाब कर काम से हटा दिया। मंदी के चलते वैसे ही कम मजदूर बचे थे। कुछ दिनों बाद उसने सिलाई करने वाले तथा प्रेस करने वाले मजदूरों से रसीदी टिकट लगे हुए कोरे कागज पर दस्तखत करवा लिये। मगर इन मजदूरों को अभी तक तनख्वाह नहीं दी है।

● सुरेन्द, लुधियाना

आप जानते हैं सबसे खतरनाक चीज,
जो जन्म देती है अन्याय को,
भयकारक है जिसका नाम भी,
डरावना है लालच भी जिसका,
कोढ़ है समाज का जो,
आपका और हमारा भी,
क्योंकि वह नहीं रहने देती है साबुत,
विकृत करती है देह, मस्तिष्क और मन को,
क्या है वह जो इतनी बदशक्ल है?
जी हां –
आपकी समझौतापरस्ती ही तो है वह,
जो नाइन्साफी चलने देती है,
आप मूंदे रहते हैं आंखें,
और हर घड़ी बदलती जाती है
दुनिया एक बदशक्ल देह में
जिस पर निगाह डालना
अपने भीतर से दरक जाना है।

–शहंशाह हुसैन, लखनऊ

भारत सरकार एक तरफ जहाँ किसानों-मज़दूरों के साथ लगातार ज्यादती करती जा रही है, वहीं दूसरी तरफ हर पहलू से उद्योगपतियों का साथ दे रही है। किसानों को आठ घण्टे मुश्किल से बिजली मिल पाती है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में कोई ट्रांसफार्मर फुंक जाये तो दूसरा ट्रांसफार्मर रखने में महीनों लग जाते हैं। जबकि उद्योगपतियों को चौबीसों घण्टे बिजली दी जाती है और औद्योगिक क्षेत्र में कोई ट्रांसफार्मर फुंके तो तुरन्त दूसरा ट्रांसफार्मर रख दिया जाता है। पर्याप्त बिजली न मिलने के कारण किसानों को इंजन से सिंचाई करनी पड़ती है। इसका फायदा भी सरमायेदार के पास जाता है। इस कारण छोटे-मंझोले किसान तबाह रहते हैं। जब उनका सारा पैसा डीजल में खर्च हो जायेगा तो मज़दूर को वह मजदूरी ठीक से कैसे दे पायेगा। इस तरह न किसान का ठीक से पेट भरता है और न ही मज़दूर का। पेट तो सिर्फ सरमायेदार या सरकार का ही भरता है।

इसलिए यदि किसानों और मज़दूरों दोनों की क्रान्तिकारी आवाज एकजुट होकर 'बिगुल' को साथ लेकर एक साथ आवाज उठे तो सरमायेदारों और उनकी पिट्ठू सरकार की जड़ों को उखाड़ा जा सकता है।

● भगवती प्रसाद शर्मा
दिल्ली प्रदेश उपाध्यक्ष
रिपब्लिकल पार्टी आफ इण्डिया

'धनपशु'

'धनपशु' शब्द अब तक ईर्ष्यालु और कुंठित लोगों द्वारा दी गई गाली के रूप में लिया जाता था। किन्तु अब वैज्ञानिक प्रयोगों और अध्ययनों में एक स्थापित सचाई के रूप में उभरने लगा है। एक प्रकृति वैज्ञानिक रिचर्ड कोनिफ ने अपने शोध प्रयोगों में पाया कि अति सम्पन्न लोग जानवरों की तरह व्यवहार करते हैं। (The rich, they behave like animals--Sarah Baxter Times of India 21-10-2002) यानी कि वे धनी नहीं बल्कि वे 'धनपशु' होते हैं। अपनी शीघ्र ही प्रकाशित पुस्तक (The Natural History of Rich: a Field Guide) में कोनिफ ने अति सम्पन्न लोगों तथा जानवरों के व्यवहार में साम्य का अध्ययन किया है। इसके पहले वे जेलीफिश तथा अन्य क्षुद्र अकशेरूकीय जीवों के व्यवहार के संबंध में अपने शोध प्रबंध प्रकाशित करा चुके हैं।

मौजूदा अध्ययन में पशुरूपण (Zoomorphing) का सहारा लेते हुए कोनिफ ने मानव व्यवहार का अध्ययन किया है। इस प्रणाली में अध्ययन के विषय–आदमी के व्यवहार की तुलना जानवरों के व्यवहार से करने के बाद निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस अध्ययन से कोनिफ का निष्कर्ष है : मनुष्यों में धनवान मनुष्यों का व्यवहार ज्यादा पशुवत होता है। अत: अगली बार यदि किसी धन्ना सेठ के लिए 'धनपशु' शब्द प्रयुक्त होता हुआ सुने तो इसे ईर्ष्या की अभिव्यक्ति या गाली ही न समझा जाए – यह एक वैज्ञानिक निष्पत्ति भी है।

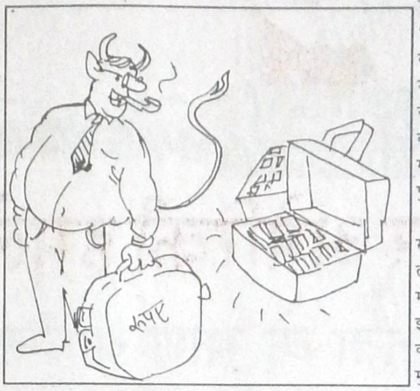

अब ज्यादा विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या हम करोड़ों वर्षों के अनुवांशिक विकास, लाखों वर्षों के सामाजिक विकास और हजारों वर्षों के दार्शनिक और वैज्ञानिक विकास को धता बताकर अपना सामाजिक-साँस्कृतिक नेतृत्व इन धन पशुओं, एक नूतन किस्म के डायनासोरों के हाथ में छोड़ सकते हैं? सम्भवत: नहीं! किन्तु यदि सम्पत्ति का शिकंजा यूँ ही कसता चला गया तब निसन्देह मनुष्य का भविष्य इन्हीं पशुवत पुरुषों के हाथों में सिमट जाएगा।

अत: मानवता द्वारा सृजित समस्त सार्थक फलों की रक्षा तथा उनका 'पशुमानवों' के हाथों में केन्द्रीकरण रोकने हेतु तथा इससे भी आगे उन पशुमानवों की पशुता कारक समृद्धि से मुक्ति हेतु यह अत्यन्त मौजूँ बन जाता है कि पूंजी की सत्ता को समूल नष्ट कर सहज मानवीय सरोकारों को केन्द्र में स्थापित किया जाए।

(मुक्तिबोध मंच, पंतनगर)

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

'बिगुल'

सम्पादकीय कार्यालय	:	69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उप कार्यालय	:	जनगण होम्यो सेवासदन मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क	:	सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार, फेज-1 दिल्ली-91

मूल्य - एक प्रति -रु. 3/-
वार्षिक - रु. 40.00 (डाक व्यय सहित)

'बिगुल'

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 4:00 से 7:00 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर -273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

- कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा- लेनिन 5/-
- मकड़ा और मक्खी- विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
- ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके-सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
- अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
- समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और
- महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
- क्यों माओवाद? 10/-
- मई दिवस का इतिहास 3/-
- अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
- पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
- बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 3/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 19 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ

साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध आर-पार की लड़ाई मेहनतकश जनता के बलबूते पर ही लड़ी जा सकती है!

सम्पादक मण्डल

बिगुल के जनवरी 2003 के अग्रलेख में हमने साम्प्रदायिक फासीवादी राजनीति के खूनी खेल की चर्चा करते हुए इसे परवान चढ़ाने में कांग्रेस और अन्य संसदीय पार्टियों की भूमिका की तथा चुनावी वामपंथी पार्टियों द्वारा इसके रस्मी और मरियल विरोध की चर्चा की थी। अब हम इस बात की संक्षिप्त चर्चा करेंगे कि भारतीय संस्कृति और हिन्दुत्व के "राष्ट्रीय गौरव" की रट लगाते हुए देशी-विदेशी पूँजी की सेवा में पूरी वफादारी के साथ लगे हुए हिटलर-मुसोलिनी की जारज भारतीय औलादों के खिलाफ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शक्तियों की आज क्या भूमिका बन रही है और क्या बननी चाहिए।

लेकिन इसके पहले कुछ बुनियादी बातों को हम ज़ोर देकर एक बार रेखांकित करना चाहेंगे। **पहली बात,** आज सर्वहारा के क्रान्तिकारी संघर्ष की स्थिति चाहे जितनी भी खराब हो, इस इतिहास-सिद्ध सच्चाई को पक्के तौर पर गाँठ-बाँध लेने की जरूरत है कि साम्प्रदायिक फासीवाद का मुकाबला सर्वोपरि तौर पर मजदूर वर्ग और फिर अन्य मेहनतकश अवाम की लामबन्दी और संगठित शक्ति के बूते ही किया जा सकता है। **दूसरी बात,** मध्य वर्ग के ईमानदार धर्मनिरपेक्ष तत्व भी केवल तभी सर्वहारा वर्ग के साथ मिलकर साम्प्रदायिक फासिस्टों से मोर्चा ले सकेंगे, अन्यथा वे संशोधनवादी पार्टियों के रस्मी आयोजनों के भागीदार बने रहेंगे या फिर इस या उस भाजपा-विरोधी बुर्जुआ दल को वोट देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री करते रहेंगे। **तीसरी बात,** साम्प्रदायिक फासिस्ट ताकतों के विरुद्ध मज़दूर वर्ग की राजनीति की नुमाइन्दगी जब तक संशोधनवादी पार्टियाँ करती रहेंगी, तबतक न तो मज़दूर वर्ग की भूमिका प्रभावी हो सकती है और न ही मध्यवर्ग के प्रगतिशील हिस्से की। गाँव के ग़रीबों और शहरी मध्यवर्ग के बीच साम्प्रदायिक फासिस्टों के प्रचार के प्रभाव का कारगर काट भी तब तक संभव नहीं। **चौथी बात,** मध्य वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली ताकतों के रूप में विभिन्न सामाजिक जनवादी, संशोधनवादी और बुर्जुआ सुधारवादी ताकतों को, फासिस्टों के विरुद्ध आर-पार की लड़ाई के किसी फैसलाकुन दौर में, किसी एक व्यापक फासीवाद-विरोधी संयुक्त मोर्चे में तभी लाया जा सकता है और ऐसा कोई मोर्चा सिर्फ तभी प्रभावी हो सकता है जबकि पहलकदमी क्रान्तिकारी वाम के हाथों में हो, मजदूर वर्ग में उसका व्यापक आधार हो तथा उसपर क्रान्तिकारी वाम राजनीतिक वर्चस्व मुख्यत: कायम हो चुका हो। यह तर्क आगे बढ़कर यहाँ तक जाता है कि फासीवादी ताकतों को मुँहतोड़ जवाब देने का काम सर्वहारा वर्ग की अखिल भारतीय पार्टी बनाये बिना संभव नहीं है। **पाँचवी बात,** भाजपा सत्ता में रहे या न रहे, भारतीय राजनीति और समाज में, साम्प्रदायिक फासीवाद की उपस्थिति एक कष्टप्रद नासूर की तरह बनी रहेगी, क्योंकि इसकी जड़ें भारतीय पूँजीवाद (और विश्व पूँजीवाद के भी) के ढाँचागत संकट में हैं। बुर्जुआ जनवाद के क्षरण-विघटन की विश्व-ऐतिहासिक प्रवृत्ति की यह एक अभिव्यक्ति है। भारतीय समाज के जिस अतीत ने इसका चरित्र और स्वरूप गढ़ा है, उसके बोझ को जनता की छाती से हटाने का काम सिर्फ नई सर्वहारा क्रान्ति ही कर सकती है। यानी भारतीय क्रान्ति के विकास के साथ, आदि से अन्त तक, साम्प्रदायिक फासीवाद और हर तरह के धार्मिक कट्टरपंथ के विरुद्ध संघर्ष का कार्यभार अपरिहार्यत: जुड़ा रहेगा।

यदि हम व्यावहारिक हैं और अपनी जिम्मेदारियों के प्रति वाक़ई गम्भीर हैं तो सबसे पहले, हमें इस कड़वी सच्चाई को बेलागलपेट स्वीकार करना होगा कि विगत तीन दशकों से लगातार बिखराव का शिकार कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर आज विघटन के मुकाम पर खड़ा है। आज भी क्रान्तिकारी कतारों की सबसे बड़ी ताकत यहीं संकेन्द्रित है, लेकिन लम्बे समय से जारी गतिरोध ग्रुपों-संगठनों के क्रान्तिकारी चरित्र तक को गम्भीरता से प्रभावित कर चुका है। विचारधारात्मक कमजोरी के चलते मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन- स्तालिन-माओ की परम्परा की दुहाई देने और संशोधनवाद को गाली देने की रस्म अदायगी के बावजूद, बहुतेरे ग्रुप स्वयं अपना बोल्शेविक चरित्र खो चुके हैं या तेजी से खो रहे हैं या फिर उनके ढाँचे में संशोधनवादी दीमक लग चुका है। कुछ ग्रुप "वामपंथी" अराजकतावाद के साथ जनदिशा की संशोधनवादी समझ की अवसरवादी खिचड़ी पकाते हुए उस मुकाम तक पहुँचते जा रहे हैं, जहाँ से मार्ग-परिवर्तन या वापसी सम्भव नहीं होती। अपनी कमज़ोर विचारधारात्मक समझ और लचर सांगठनिक ढाँचे एवं निम्न-बुर्जुआ कार्यशैली के साथ भारतीय क्रान्ति की ग़लत एवं पिछड़ी समझ (नयी जनवादी-क्राति की एक "विचित्र" किस्म) लागू करते हुए ज्यादातर ग्रुप तो आज भारतीय नरोदवादी बन चुके हैं। हालत यह है कि लाभकारी मूल्य की धनी किसानों की माँग कई क्षेत्रों में उनकी प्रमुख माँग बनी हुई है और कुछ अन्य क्षेत्रों में वे गाँव के ग़रीबों में ज़मीन की भूख जगाने के प्रतिगामी काम में लगातार लगे हुए हैं। ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को उसकी वर्गीय माँगों पर संगठित करने का उद्यम नगण्य है। कुछ ग्रुप औद्योगिक सर्वहारा के बीच यदि काम कर भी रहे हैं तो वह जुझारू अर्थवाद से अधिक कुछ भी नहीं है। नंगा और कड़वा सच यह है कि लम्बे समय से सर्वहारा वर्ग के विच्छिन्न कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप और संगठन आज "क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी ग्रुप" बनकर रह गये हैं और यह स्थिति तोड़ने में जो देर लगायेंगे, वे फिर जल्दी ही अपरिवर्तनीय असुधारणीय बन जायेंगे। बीच-बीच में यहाँ-वहाँ से एकता की गुहारें या कोशिशें इन ग्रुपों की मजबूरी या सदिच्छा हो सकती है, लेकिन ऐसे एकता-प्रयासों या 'पॉलिमिक्स' से यदि एक सर्व भारतीय पार्टी गठित होनी हाती तो विगत तीन दशकों का इतिहास कुछ और ही होता। एकता बुद्धिजीवी ग्रुपों की सदिच्छाओं-सद्भावनाओं से मुमकिन नहीं, मज़दूर वर्ग अपने संघर्षों से उसे अर्जित करेगा – लेनिन के ये विचार भारतीय परिस्थितियों पर भी आज पूरी तरह लागू होते हैं। पार्टी गठन के कार्यभार को आज पार्टी-निर्माण के मातहत करना होगा। जन कार्यों में कार्यक्रम की अपनी समझ को लागू करते हुए आज मज़दूर वर्ग में सर्वहारा राजनीति के व्यापक प्रचार और उद्वेलन का काम करना होगा और उनके बीच से पार्टी-भरती पर जोर देते हुए बोल्शेविक ढाँचा संगठित करना होगा। अनुभवों से सही सत्यापित लाइन अन्ततोगत्वा, मौजूद क्रान्तिकारी कतारों को अपने इर्द-गिर्द लामबन्द करने में सफल होगी। इस काम के साथ-साथ, अनुभवों से सत्यापित अपनी समझ पर उन क्रान्तिकारी ग्रुपों-संगठनों से लगातार बहस-बातचीत होनी चाहिए, जिनके साथ यह सम्भव हो।

साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध व्यावहारिक कार्रवाई के सवाल पर चर्चा के पूर्व उपरोक्त संक्षिप्त चर्चा जरूरी थी। यह अलग से विस्तृत चर्चा का विषय है। यहाँ इतनी चर्चा परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए की गयी है।

सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश अवाम के बीच प्रभावी जनाधार के अभाव में, तथा मज़दूरों में क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं राजनीतिक संघर्षों की उपेक्षा करके जुझारू अर्थवादी लाइन लागू करने के चलते, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप सीमित स्तर पर भी साम्प्रदायिक फासिस्टों के विरुद्ध प्रतिकार की कार्रवाई नहीं कर पा रहे हैं। संशोधनवादियों को रस्मी कार्रवाइयों के लिए कोसते हुए वे खुद भी रस्मी कार्रवाइयों और प्रतीकात्मक विरोध-प्रदर्शनों तक ही सीमित हैं। सच तो यह है कि इससे अधिक कर पाने की स्थिति आज ज्यादातर ग्रुपों-संगठनों की है ही नहीं। कुछ संगठन साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष के सापेक्षत: स्वतंत्र चरित्र से इनकार करते हुए यह धारणा प्रस्तुत करते हैं कि चूँकि साम्प्रदायिक फासीवाद उदारीकरण-निजीकरण की अर्थनीति की उपज है, अत: इसके विरुद्ध संघर्ष भूमण्डलीकरण-विरोध के एक अंग के रूप में ही होना चाहिए। आर्थिक अपचयनवा (इकोनॉमिक रिडक्शनिज़्म) का इससे अधिक भोंड़ा उदाहरण ढूँढ़ना मुश्किल है। अन्य ज्यादातर संगठन ऐसे हैं जो खास-खास मौक़ों पर रस्मी आयोजनों में भाग लेने के साथ ही अपने-अपने पार्टी-मुखपत्रों में साम्प्रदायिक फासिस्टों के विरुद्ध लेख छापकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं।

स्थिति अत्यन्त गम्भीर है लेकिन मात्र चिन्ता प्रकट करने के बजाय, हम जहाँ खड़े हैं, वहीं से नयी शुरुआत का व्यावहारिक और जुझारू कार्यक्रम लेना होगा। स्थितियों की प्रतिकूलता से कुछ न कर पाने की विवशता के नतीजे तक पहुँचना घनघोर पराजयवाद होगा। सच्चे कम्युनिस्टों को कदापि इसका शिकार नहीं होना चाहिए। हमें साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध व्यापक मेहनतकश जनता को लामबन्द करने की दीर्घकालिक प्रक्रिया की आज ही कुछ ठोस कामों से शुरुआत कर देनी होगी। यह हमारी तमाम सरगर्मियों के साथ लगातार जारी रहेगा। इस दूरगामी परिप्रेक्ष्य के साथ ही एक तात्कालिक, फौरी परिप्रेक्ष्य भी जरूरी है। निर्णायक हमले की तैयारी दूरगामी काम है। फिलहाल तो क्रान्तिकारी शक्तियों को प्रभावी प्रतिरक्षात्मक तैयारी भी करनी होगी।

दूरगामी परिप्रेक्ष्य यह है कि वर्ग-संघर्ष को उन्नत धरातल पर ले जाने की सर्वहारा वर्ग की क्षमता के साथ साम्प्रदायिक फासीवाद को नेस्तनाबूद करने का सवाल जुड़ा हुआ है। लेकिन इस प्रश्न को नियतत्ववादी ढंग से नहीं देखा जाना चाहिए। रोज़मर्रे के आर्थिक-राजनीतिक संघर्षों के साथ-साथ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को चाहिए कि वे धार्मिक कट्टरपंथ के विरुद्ध लगातार प्रचार को अपनी राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा की कार्रवाई का एक अनिवार्य बुनियादी अंग बना दें और मुख्य जोर औद्योगिक और फिर ग्रामीण सर्वहारा अर्द्धसर्वहारा आबादी के बीच प्रचार कार्य पर दें। सर्वहारा वर्ग के बीच कम्युनिस्टों की जड़े जितनी अधिक गहरी होंगी, साम्प्रदायिक फासिस्ट ताकतों के हमलों का प्रतिकार उतने ही प्रभावी ढंग से किया जा सकेगा-यह हमारी फौरी ज़रूरत हैं। और दूरगामी परिप्रेक्ष्य यह है कि मज़दूर वर्ग ही फासिस्टों के विरुद्ध आर-पार की लड़ाई लड़ेगा, इसलिए हमारे प्रचार एवं आन्दोलन की कार्रवाइयों का मुख्य केन्द्र मज़दूर आबादी के घनत्व वाले इलाकों को बनाया जाना चाहिए। मज़दूर आबादी के बीच साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध लगातार प्रचार के साथ ही हमें धर्मनिरपेक्षता के बारे में अपने विचारों को भी लगातार स्पष्ट करना चाहिए, धर्म-विरोधी कम्युनिस्ट प्रचार के काम को भी लगातार चलाना चाहिए तथा इन सभी प्रश्नों पर सभी बुर्जुआ पार्टियों के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के साथ ही सामाजिक जनवादियों से अपने फर्क को भी स्पष्ट करते चलना चाहिए। युवा मज़दूरों और मज़दूरों के युवा बेटों के दस्ते संगठित करने के काम को भी हमें अपने रोज़मर्रे के कामों में शामिल करना होगा और फासिस्ट गुण्डा-गिरोहों के मुकाबले के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना होगा। मज़दूरों के बाद प्राथमिकता-क्रम में दूसरे स्थान पर हमें मध्यवर्ग के निचले और रैडिकल संस्तरों के बीच काम करना होगा और उनमें भी मुख्यत: युवाओं पर केन्द्रित करना होगा। आज हमारी जो भी ताकत है, उसे लेकर यहाँ से शुरुआत कर देनी होगी।

एक महत्वपूर्ण पहल जो आज ली जा सकती है वह यह कि क्रान्ति के कार्यक्रम व रणनीति तथा इतिहास और सांगठनिक लाइन विषयक अपने तमाम मतभेदों के बावजूद, सभी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों को (अपनी-फौरी और दूरगामी ज़मीनी कार्रवाईयों को अपने स्तर पर लगातार चलाते हुए) साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध न्यूनतम आम सहमति के एक साझा कार्यक्रम के आधार पर मोर्चाबन्द हो जाना चाहिए। यह कत्तई संभव है और इसकी कोशिश ज़रूर होनी चाहिए। एकता के प्रति ज्यादा से ज्यादा चिन्ता प्रकट करते हुए अव्यावहारिक-अवास्तविक प्रयासों में लगे हुए तथा स्वयं को "ज्यादा ज़िम्मेदार" क्रान्तिकारी सिद्ध करने के लिए आतुर कुछ अति उत्साही ग्रुपों से भी हम यही अपील करना चाहेंगे कि फिलहाल उन्हें साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के एक साझा मंच के प्रश्न पर गम्भीरता से सोचना चाहिए। यह हम सबकी एक फौरी जरूरत है। अलग-अलग कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों का जनाधार चाहे जितना भी छोटा हो, यह एक सच्चाई है कि एक साथ मिला देने पर आज भी उनकी कतारों की ताकत अच्छी-खासी हो जायेगी जिसके आधार पर कई कारगर फौरी कार्रवाइयों को अंजाम दिया जा सकता है।

मध्यवर्ग के बहुतेरे ऐसे ईमानदार सेक्युलर लोग हैं, जो रस्मी कार्रवाइयों से गहरे असंतोष के बावजूद, किसी विकल्प के अभाव में संशोधनवादी पार्टियों व उनके जनसंगठनों की सरगर्मियों में शामिल होते रहते हैं। यदि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन एकजुट होकर कोई जुझारू पहल लें और मेहनतकश अवाम के एक हिस्से को भी अपने साथ सक्रिय रूप से खड़ा कर सकें तो मध्य वर्ग के ऐसे तमाम बुद्धिजीवी उनके साथ आ जुड़ेंगे। साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध व्यापक संयुक्त मोर्चे की हमारी कोई पहल चाहे जितनी भी ईमानदार हो, अपने वर्ग चरित्र और सांगठनिक संकीर्णता के चलते संशोधनवादियों की यह फितरत होती है कि वे कम ताकत वाले संगठनों को कोई भाव नहीं देते। यदि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पहले स्वयं को एक साझा मोर्चे के रूप में संगठित करके, फिर संशोधनवादी दलों से साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे के प्रश्न पर बात चलायें तथा विभिन्न साझा कार्रवाइयों में हिस्सा लें तो उनकी अनदेखी इतनी आसान नहीं होगी। साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतें अपने उन्मादी उभार के दौर में संशोधनवादी पार्टियों को भी नहीं बख्शेंगी। और तब कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शक्तियों के साथ मोर्चा बनाना संशोधनवादियों के लिए भी अस्तित्व की शर्त होगी। दूसरा रास्ता यही होगा कि वे फासिस्टों के आगे साष्टांग दण्डवत करने लगें। हमें संशोधनवादियों की तरह सांगठनिक संकीर्णता का शिकार कदापि नहीं होना चाहिए। विचारधारा और अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रम पर अडिग रहते हुए हमें लगातार साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी व्यापक संयुक्त मोर्चे के प्रश्न पर सही रुख अपनाना होगा और उसके लिए लगातार कोशिश करनी होगी। मध्यवर्ती ताकतों को साथ लेने के बारे में कम्युनिस्टों का दृष्टिकोण हर-हमेशा स्पष्ट होना चाहिए। लेकिन इससे भी पहले का कदम यह है कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शक्तियाँ साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध एक साझा मोर्चे में लामबन्द हों। सच यह है कि आज की स्थिति में यह भी एक कठिन काम है, पर कठिन होने के कारण किसी ज़रूरी काम की अनदेखी नहीं की जा सकती। यह कठिन काम है लेकिन अव्यावहारिक नहीं।

और इस प्रयास के साथ-साथ हर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन को अपने स्तर पर साम्प्रदायिक फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष की फौरी और दूरगामी महत्व वाली जमीनी कार्रवाइयाँ लगातार जारी रखना चाहिए तथा सर्वोच्च प्राथमिकता सर्वहारा वर्ग की तैयारी को देना चाहिए।

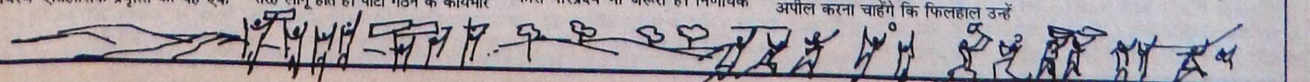

लुधियाना के मज़दूर और मज़दूर आन्दोलन

लुधियाना के मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों का काम

(पिछले अंक से आगे)

-सुखदेव

लुधियाना देश के बड़े औद्योगिक केन्द्रों में से एक है। यह पंजाब का सबसे बड़ा औद्योगिक केन्द्र भी है, जिसके एक ओर घंटे भर की दूरी पर पंजाब की इस्पात नगरी गोविन्दगढ़ है तो दूसरी ओर फगवाड़ा और जालंधर है। लुधियाना तथा इसके आस-पास मानव इतिहास के सबसे क्रांतिकारी वर्ग सर्वहारा वर्ग का बड़ा जमघट है, जहां पर अलग-अलग उद्योगों तथा अन्य कामों में लगे मजदूरों की संख्या लाखों में होगी। मजदूरों के संकेन्द्रण के लिहाज से देखा जाये तो इस केन्द्र पर मजदूरों के बीच काम करना किसी भी ऐसे संगठन, जो सर्वहारा का संगठन होने का दावा करता है, की प्राथमिकताओं में सबसे ऊपर होना चाहिए था। मगर पंजाब के क्रांतिकारी ग्रुपों (अगर आज भी इन्हें क्रांतिकारी ग्रुप कहा जा सकता है तो) ने कभी भी यहां पर मजदूरों के बीच काम को गंभीरता से नहीं लिया। इसकी एक वजह तो यह हो सकती है कि नक्सलवाड़ी के आंदोलन के बाद जो देश में एक नई क्रांतिकारी वामपंथी धारा अस्तित्व में आई भी, उसमें भारतीय समाज, क्रांति की मंजिल, क्रांति के रास्ते तथा रणनीति की एक गलत समझदारी हावी रही है। इस धारा के ज्यादातर ग्रुपों का मानना था कि भारत एक अर्द्ध औपनिवेशिक-अर्द्ध सामंती देश है और यहां पर क्रांति की मंजिल नई जनवादी क्रांति है। इसी समय के चलते शहरी केन्द्र इनकी प्राथमिकता में नहीं थे। इसीलिए इन संगठनों ने शहरी सर्वहाराओं में काम को कोई खास तवज्जो नहीं दी। भारतीय समाज की गलत समझदारी के चलते, देहात में आधार क्षेत्र बनाने की दौड़ में, धनी किसानों से साझा मोर्चा बनाने के लिए इन्होंने धनी किसानों की ही मांगों को अपना लिया। आज यह सर्वहारा वर्ग के दुश्मनों (देहाती कृषि बुर्जुआ) की लडाई लड़ते-लड़ते बहुत दूर निकल गये हैं। इनका मुख्य जनाधार ग्रामीण अमीर किसानों में बना है और इन संगठनों के सदस्यों एवं नेतृत्व का संघटन भी ऐसा बना है जिसमें धनी किसानों की भरमार है। इन संगठनों के नेतृत्व में और यहां तक कि कई संगठनों के सचिव भी धनी किसान हैं। जब आज ये लोग यहां पहुंच चुके हैं तो इनसे मजदूरों में जाने की उम्मीद भी बेकार है।

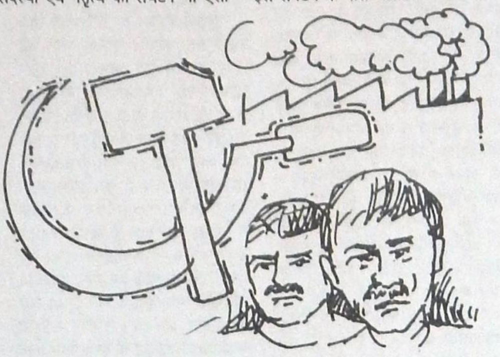

नई जनवादी क्रांति के कार्यक्रम को मानने वाले इन संगठनों में से एक संगठन, जिसे आजकल **सी.पी.आर.सी.** के नाम से जाना जाता है, ने '70 के दशक के आखिर में मजदूरों में काम शुरू किया था, मगर यह संगठन कभी भी जुझारू अर्थवाद की चौहद्दी को पार नहीं कर सका। आज यहां के औद्योगिक मजदूरों में इसका काम लगभग खत्म हो चुका है।

इसी संगठन से 1982 में अलग हुए तथा 1983 से आर.सी.पी.,आई. के नाम पर काम करने वाले संगठन ने 1983 में यहां के मजदूरों में काम शुरू किया था। इस संगठन ने सी.पी.आर.सी. के अर्थवाद का विरोध करने तथा मज़दूरों में सीधे-सीधे राजनीति ले जाने की बात करते हुए खुलेआम नक्सलबाड़ी के नाम पर काम शुरू किया। उन दिनों बिहार से यहां पर आने वाले मजदूरों में अभी नक्सलबाड़ी के नारों के प्रति आकर्षण था। इसीलिए बड़ी तादाद में मजदूर इनकी तरफ खिंचे आये। मगर इस संगठन के पास भारतीय समाज की न तो समग्र समझ थी और न ही भारतीय क्रांति के रास्ते के प्रति स्पष्टता। भले ही इस संगठन ने आखिर में पूंजीवादी विकास का सवाल उठाया, मगर इसे किसी नतीजे पर पहुंचाने में ये लोग नाकाम रहे। एक निम्न पूंजीवादी सांगठनिक लाइन पर काम करते हुए यह संगठन जल्दी ही बिखर गया। साथ ही लुधियाना के मजदूरों में इनके काम का भी सफाया हो गया।

पंजाब में कम्युनिस्ट संगठनों के नाम पर काम करने वाले ज्यादातर संगठन अभी भी नई जनवादी क्रांति के कार्यक्रम से चिपके हुए हैं। विज्ञान का नियम है कि हर चीज एक समय बाद अपने उलट में बदल जाती है। इसी नियम के मुताबिक इनका "नया जनवाद" अब नरोदवाद में बदल चुका है।

"नई जनवादी क्रांति" के कार्यक्रम को मानने वालों के अलावा पंजाब की सरजमीन पर एक बानगी ऐसी भी है जिसके मुताबिक भारत साम्राज्यवाद से राजनीतिक तौर पर आज़ाद एक पूंजीवादी देश है जो कि समाजवादी क्रांति की मंजिल में है। पिछले सत्रह-अठारह सालों से यह समूह अपनी इस परियोजना पर डटा हुआ है। मगर यह समूह सिर्फ जुबानी जमा-खर्च से ही भारत में समाजवादी क्रांति लाना चाहता है और इसके लिए जरा सा भी कष्ट उठाने को तैयार नहीं हैं। अरविंद की अगुवाई वाली सी.सी.,सी.एल.आई. (एम-एल) नामक इस संगठन के लोग कभी मजदूरों में जाने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाये।

सी.सी.,सी.एल.आई. (एम-एल) का पंजाब वाला हिस्सा 1985 में समाजवादी क्रान्ति की पोजीशन लेने के बाद, आर.सी.पी.,आई. से अलग हो गया था और 1987 में सी.एल.आई. (एम-एल) में शामिल हो गया था जिसने 1983 में ही समाजवादी क्रान्ति की पोजीशन ली थी। पुनः अरविन्द के नेतृत्व में बौद्धिक निठल्लेपन की लाइन पर 1989 में जब सी.सी.,सी.एल.आई. (एम-एल) बनी तो पंजाब वाला हिस्सा उसके साथ चला गया। इस संगठन के सेक्रेटरी तो आज निठल्ला मुक्त चिन्तन करते-करते मार्क्सवाद से भी मीलों दूर निकल गया है, लेकिन संगठन का पंजाब वाला हिस्सा फिर भी उससे इतनी मजबूती से गांठ जोड़े हुए है कि कोई रूढ़िवादी हिन्दू विवाहिता भी शर्मा जाये। सेक्रेटरी अपना मुक्त चिन्तन का राग अलग अलापता है और संगठन के पंजाब के नेता लोग अपनी नरोदवादी और रुटीनी अर्थवादी कार्रवाइयों की ढपली अलग बजाता है। सच तो यह है कि इस संगठन के नेता लोग शुरू से ही थकी हारी मानसिकता में थे। पिछले सत्रह साल की इनकी कारगुजारी देखें तो ऐसा लगता है कि जैसे इस संगठन के सभी लोगों ने नसबंदी करवा रखी हो, क्योंकि इनके कुटुम्ब में नये सदस्यों का शुभागमन नहीं हो रहा है और पुराने एक के बाद एक इस संगठन को छोड़ते जा रहे हैं। पिछले सत्रह साल से सिकुड़ता जा रहा यह संगठन अब अपने खात्मे की ओर अग्रसर है। जो लोग अभी भी इस संगठन में बचे हुए हैं, वे एकदम निठल्ले, सम्पत्ति आधारित पारिवारिक जिंदगी में डूबे हुए, अपने नेह-नीड़ो के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं।

नई जनवादी क्रांति के कार्यक्रम को मानने वाले तो मजदूरों में काम न करने का कोई तर्क दे सकते हैं मगर समाजवादी क्रांति को मानने वालों के पास ऐसा क्या तर्क हो सकता है। समाजवादी क्रांति को तो मुख्यतौर पर मजदूर ही अंजाम देते हैं। लेकिन ये सज्जन "जनकार्य" के नाम पर आजकल जो कुछ कर रहे हैं, वह है धनी किसानों को संगठित करने का काम, उन धनी किसानों को जो इनके कार्यक्रम के मुताबिक क्रान्ति का दुश्मन वर्ग है। लुधियाना जैसे औद्योगिक केन्द्र पर काम करना कभी भी इनके कार्यक्रम में नहीं रहा है। मगर कुछ साल पहले किसी दूसरे संगठन से टूट कर कुछ मजदूर इनके साथ आ गये, जिससे लुधियाना में इनका कुछ काम शुरू हुआ। मगर इनका यह काम भी अर्थवाद के दलदल में धंसा हुआ है। इनके अर्थवाद की एक और खासियत यह है कि इनका अर्थवाद एक जुझारू अर्थवाद नहीं है बल्कि एक मरियल अर्थवाद है।

खुद को कम्युनिस्ट क्रांतिकारी कहलाने वाले जो भी संगठन यहां पर मजदूरों में काम करते रहे हैं उनमें से किसी ने भी कभी मजदूरों में मजदूर वर्ग की विचारधारा के प्रचार-प्रसार का काम हाथ में नहीं लिया, और ना ही किसी संगठन ने मजदूर अखबार निकालने का काम हाथ में लिया जिससे मजदूर वर्ग को उसकी विचारधारा से लैस किया जा सके। इन संगठनों की तरफ से जो भी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती रही हैं वे एक ट्रेड यूनियन के पत्र से आगे नहीं जाती रही हैं।

लुधियाना के ट्रेड यूनियन आंदोलन तथा यहां के क्रांतिकारी संगठनों के मजदूरों के बीच काम के तौर-तरीकों के नकारात्मक-सकारात्मक पहलुओं से लुधियाना तथा देश के अन्य मजदूर अपनी आनेवाली लड़ाइयों के लिए काफी कीमती सबक हासिल कर सकते हैं।

(समाप्त)

बोलते आँकड़ें ... चीखती सच्चाईयाँ ..

अमेरिकी समृद्धि में गरीबी की पोल

(अमेरिकी जनगणना ब्यूरो की रिपोर्ट के आधार पर)

–अमेरिका में गरीबों की संख्या सन 2000 में 3 करोड़ 16 लाख थी (यानी कुल आबादी का 11.3 प्रतिशत) जो 2001 में बढ़कर 3 करोड़ 29 लाख (कुल आबादी का 11.7 प्रतिशत) हो गया। इनमें से 1 करोड़ 17 लाख लोग 18 साल से कम उम्र के हैं।

–सन 2000 में कुल अमेरिकी परिवारों में से 8.7 प्रतिशत परिवार गरीबी से ग्रस्त थे जो पिछले 26 सालों में सबसे कम संख्या थी। सन 2001 में यह संख्या बढ़कर 9.2 प्रतिशत हो गयी। यहाँ सन 2001 में कुल 68 लाख परिवार गरीबी से ग्रस्त थे।

–अमेरिका में सन 2000 में 'अतिगरीबों' की संख्या 1 करोड़ 26 लाख थी जो सन 2001 में बढ़कर 1 करोड़ 34 लाख हो गयी।

–दुनिया के सबसे "समृद्धिशाली" देश अमेरिका में भी अमीरी और गरीबी के बीच खाई लगातार बढ़ती जा रही है। यहाँ ऊपर के सबसे अमीर 5 प्रतिशत परिवारों की आय में सन 1985 से 2001 के बीच 1,000 डालर की बढ़ोत्तरी हुई है। सन् 1985 में ऊपर के 20 प्रतिशत आबादी की आमदनी 45 प्रतिशत थी जो सन 2001 में बढ़कर पूरी आय का 50 प्रतिशत हो गयी। इसके ठीक विपरीत नीचे की 20 प्रतिशत आबादी की आमदनी 5 प्रतिशत से घटकर सन 2001 में 3.5 प्रतिशत रह गयी। यह स्थिति तब है जबकि अमेरिका में सोवियत संघ के विघटन, पूर्वी यूरोप के पतन और उदारीकरण की नीतियों के कारण सन 1993 से 2000 के बीच अमेरिका में आर्थिक संवृद्धि का एक दौर आया था।

–उदारीकरण का तिलिस्म जैसे-जैसे टूटता जा रहा है, अमेरिका आर्थिक मंदी के दुश्चक्र में फंसता जा रहा है और अमेरिका के गोरी आबादी के बीच गरीबी का प्रतिशत भी बढ़ता जा रहा है। वहाँ की गैरस्पैनिक गोरी आबादी से सन 2000 में 7.4 प्रतिशत गरीबों में शामिल हो गये, और सन 2001 में यह बढ़कर 7.8 प्रतिशत हो गया।

शील चन्द का मज़दूर आन्दोलन :

मालिक-प्रशासन-श्रम विभाग की मिली भगत का एक और नमूना

(बिगुल संवाददाता)

लालपुर (ऊधमसिंह नगर), 28 फरवरी। पिछले ढाई माह से शीलचन्द के मज़दूरों को न्याय न मिलने के कारण कारखाना परिसर के 300 मी. के दायरे में धरना-प्रदर्शन पर कोर्ट के स्टे को तोड़ते हुए क्षेत्र के तमाम संगठनों व यूनियनों ने मिलकर 28 दिसम्बर को गेट मीटिंग और प्रदर्शन किया बाद में प्रतिनिधियों ने यह ऐलान किया कि यदि 14 दिन के भीतर मज़दूरों की कार्य बहाली न की गयी तो शीलचन्द्र के मज़दूर सपरिवार गेट पर ही डेरा डाल देंगे।

एक तरफ तो सरकार देशी-विदेशी लुटरों के हित में मज़दूर विरोधी घातक श्रम कानून लागू करने के फिराक में है, वहीं दूसरी तरफ देश के तमाम ऐसे कारखाने हैं जहां लम्बे संघर्षों के दौरान मिले हुए सीमित श्रम कानून भी लागू नहीं है। वहां पर मालिकों की मनमर्जी ही कानून होता है। ऐसा ही एक कारखाना है 'शीलचन्द्र एग्रो आयल्स प्रा. लि.'। जहां के मज़दूर अस्तित्व का संकट झेलते हुए संघर्ष कर रहे हैं।

लगभग ढाई माह बीत जाने के बावजूद स्थानीय वनस्पति, रिफाइण्ड तेल आदि निर्माता शीलचन्द्र के मजदूर आज भी संघर्षरत हैं और सड़क के किनारे दिन-रात धरने पर बैठे हुए हैं। कुछ वार्ताओं की औपचारिकता निभाने के बाद श्रम विभाग व जिला प्रशासन चुप्पी साधे बैठा है। राज्य के मुख्यमंत्री-श्रममंत्री के आश्वासन की भी पोल अब खुल चुकी है।

उल्लेखनीय है कि अवैध रूप से निष्कासित श्रमिकों की बहाली, रुके वेतन का भुगतान व कारखाने में श्रमकानून लागू करने की मांग के साथ विगत 11 दिसम्बर से यहां के मजदूर आन्दोलनरत हैं। एक समय जब आन्दोलन अपने पीक पर था और मालिक व प्रशासन दबाव में आ गए थे तो प्रबन्धन ने बड़े ही साजिशाना तरीके से 10 जनवरी के लिए कारखाने के एक प्लान्ट में आग लगवा दी। 'बिल्ली के भाग्य से छींका फूटा' और प्रशासन पूरे मामले को मोड़ने में कामयाब रहा। प्रशासनिक अधिकारियों ने मजदूरों को भरमाने की कई कोशिशें की लेकिन वे भ्रमित नहीं हुए और एकताबद्ध संघर्ष की राह पर डटे रहे।

शीलचन्द्र के मजदूरों ने स्थानीय अन्य जनसंगठनों व यूनियनों के साथ मिलकर साझा संघर्ष के तहत जुलूस, प्रदर्शन आदि कई कार्यक्रम आयोजित किये। आगामी 28 फरवरी को धरना-प्रदर्शन पर लगे स्टे को तोड़कर एक बड़ी गेट मीटिंग करने का कार्यक्रम भी है।

शीलचन्द्र के मजदूरों के लिए एकताबद्ध संघर्ष का यह पहला अनुभव है फिर भी वे विचलित हुए बगैर संघर्षरत हैं। लेकिन संघर्ष में साझीदार अन्य यूनियनों/ संगठनों की स्थिति भिन्न है। ऐसे भी संगठन हैं जिनका ध्यान संघर्ष को आगे ले जाने पर कम, दूसरे संगठनों की टांग खीचने और अपने संगठन की वरीयता स्थापित करने पर ज्यादा है। जाहिर तौर पर यह साझा स्पिरिट के खिलाफ है।

बहरहाल प्रशासन, श्रम विभाग व मालिक के नापाक गठबंधन और सरकार की चुप्पी के बावजूद शीलचन्द के मजदूरों का संघर्ष जारी है।

रानोसन प्रा. लि. (नोएडा) की दास्तान

मक्कार मालिकान के शिकंजे में मज़दूर

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा (गौतमबुद्ध नगर)।

"क्यों रे तू कल नहीं आया?"-

"सर, तबियत ठीक नहीं थी, चक्कर आ रहे थे। इसीलिए छुट्टी कर ली।"-

"तेरी बड़ी तबियत खराब रहने लगी है। ऐसा कर अपना हिसाब ले और घर बैठकर ठीक से इलाज करवा। और हाँ वैसे भी मैंने कल ही एक नये लड़के को रख लिया है।"

"सर ..."

यह रानोसन प्रा. लि. की एक आम घटना है। नोएडा के सेक्टर 57, प्लाट नं. ए-37 में स्थित इस फैक्ट्री में स्प्रिंग बनते हैं। इसके मालिकान का नाम अनिल मल्होत्रा और सुनील मल्होत्रा है। नोएडा में इनकी दो और फैक्ट्रियाँ हैं, जिनमें से एक में स्प्रिंग बनाने की मशीने बनती हैं। इन इकाइयों में बनने वाली स्प्रिंग की सप्लाई तमाम छोटे-बड़े उद्योगों से लेकर बड़ी-बड़ी इलेक्ट्रानिक, दुपहिया और भारी वाहन निर्माता कंपनियों को जाती हैं। जाहिर है मालिकान की पाँचों उँगलियां घी में हैं। कंपनी ने हाल ही में आई.एस.ओ. 9000-2001 नामक गुणवत्ता मानक हासिल किया है और अब क्यू.एस. नामक मानक हासिल करने के लिए कमर कसे हुए हैं। उम्मीद की जा रही है कि इसके बाद विदेशी बाजार में भी माल सप्लाई किया जाने लगेगा।

इस तीन मंजिला फैक्ट्री के एक हिस्से में प्रशासनिक शाखा है और बाकी हिस्सा क्वायलिंग सेक्शन मैनुअन सेक्शन, टूल रूम, टेम्परिंग रूम और स्टोर में विभाजित है। इन सभी विभागों में कुल मिलाकर 52 मज़दूर और कर्मचारी काम करते हैं। क्वायलिंग सेक्शन में आधुनिक मशीनें लगी हैं जिनमें एक-एक महीने तक का प्रोडक्शन-प्रोग्राम फीड कर दिया जाता है और लोहे के ये दैत्य स्प्रिंग उगलते रहते हैं। इन मशीनों से बेहद तेज गति से उत्पादन होता है जिसकी वजह से इन पर काम करने वाले मज़दूरों को बड़ी तेजी और एकाग्रता से काम करना होता है। मैनुअल सेक्शन में 14 मज़दूर काम करते हैं। इनमें चार महिलाएं हैं जिनके लिए पार्टीशन डालकर अलग से सेक्शन बनाया गया है। महिला मज़दूरों को मुख्यत: कॉपर स्प्रिंग का काम दिया जाता है। कारण यह कि ये स्प्रिंग बहुत महंगी होती है और इन्हें बनाने में अतिरिक्त धैर्य और सावधानी की जरूरत होती है।

मैनुअल सेक्शन में कार्यरत मज़दूरों को प्रतिदिन 10 घंटा स्टूल पर बैठकर काम करना होता है। इसकी वजह से पीठ की माँसपेशियों पर विशेष जोर पड़ता है। अधिकांश मज़दूर पीठ और कमर के दर्द से परेशान रहते हैं। काम के दौरान ग्राइण्डिंग और बेण्डिंग जैसी क्रियाओं के कारण लोहे और कॉपर के बारीक कण उड़ते हैं, ये कण सीधे-सीधे साँस के जरिये फेफड़ों तक पहुंचते हैं। इन कणों का सीधा प्रभाव हाथों पर देखा जा सकता है, जहाँ-जहाँ ये चमड़ी में बैठते हैं वहाँ खुजली शुरू हो जाती है। लोहे के तारों और स्प्रिंग को प्रेस मशीन में काटते, दबाते वक्त या फिर कड़े मजबूत तारों को मोड़ते वक्त उँगलियों पर चोट लगना आम बात है।

टेम्परिंग रूम में रखी बिजली की भट्ठियों से पैदा होने वाला असाधारण ताप वहाँ काम करने वाले मज़दूर के शरीर का पानी तक सुखा सकता है। इन भट्ठियों के तापमान का 700-1000°c तक पहुँचना मामूली बात है। इन घातक परिस्थितियों से बचाव के लिए मालिकान द्वारा कुछ नहीं किया गया है। इस कारखाने में मज़दूरों को 10-10 घंटे तक लगातार काम करने के लिए मजबूर किया जाता है इतना ही नहीं इतवार तक की छुट्टी नहीं मिलती है। ओवरटाइम के घंटे, मजदूर द्वारा की गई कम प्रोडक्शन के नाम पर काट लिये जाते हैं और जो पैसे मिलते हैं वे भी साधारण दर से दिये जाते हैं।

मज़दूर बेहद मामूली मासिक तनख्वाह पर काम करते हैं इन्हें बारह सौ से सत्रह सौ तक माहवार भुगतान किया जाता है। तनख्वाह हर माह की सात तारीख को मिलती है। अधिकांश मज़दूर कैजुअल हैं। सबसे अनुभवी मज़दूर को सुपरवाइजर बना दिया जाता है। इसका काम है मज़दूरों को लगातार अधिक काम करने के लिए लतियाते रहना। इतना ही नहीं मालिकान ने सभी सेक्शन्स में क्लोज सर्किट कैमरा लगा रखा है ताकि मज़दूरों पर अतिरिक्त मानसिक दबाव बनाया जा सके।

इस फैक्ट्री में कोई मज़दूर संगठन नहीं है। मज़दूरों के बगावती तेवर को कुंद करने के लिए फैक्ट्री में नियमित रूप से हवन, पूजा-पाठ और मैनेजमेण्ट के लोगों द्वारा महीनें में दो बार विशेष क्लास मीटिंग रखी जाती है। इनमें सभी मज़दूरों को शामिल होना पड़ता है। यहां पढ़ाया जाता है कि कैसे मालिक के प्रति वफादारी निभाएं।

मज़दूर फैक्ट्री को अपने घर के सामान समझें! इस भावना को बैठाने के लिए दो-दो तीन-तीन मज़दूरों की टीम बनाई गयी है और उन्हें फैक्ट्री की सफाई, मशीनों की सफाई, मशीनों की आयलिंग और बिजली के पंखों की सफाई, कच्चे माल और तैयार माल की उचित एवं सुव्यवस्थित रखरखाव आदि जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं। इस तरह ये धूर्त पूँजीपति मज़दूरों से फैक्ट्री के रखरखाव का काम मुफ्त में करवा लेते हैं। इतना ही नहीं कभी-कभी तो मालिकान द्वारा बड़े सरकारी अफसरों के बंगलों की सफाई करने तक के लिए भेज दिया जाता है। आखिर क्यों न हो, ये बड़े-बड़े सरकारी अफसर और पूँजीपति एक-दूसरे के भाई-बंधु ही तो हैं। मज़दूरों के कमर तोड़ने में इन पूँजीपतियों अफसरों के पर्दे के पीछे काम करने वाले गिरोह का कितना बड़ा हाथ है यह दिन के उजाले की तरह साफ है! ये मज़दूरों को मिट्टी में मिला देना चाहते हैं। सवाल है क्या हम ऐसे चुपचाप देखते रहेंगे।

कफनखसोट-मुर्दाखोरों ने सुझाया दवा-इलाज का नया नुस्खा

● मुकुल

उदारीकरण की नीतियां लागू होने के साथ ही आम जनता को मिलने वाली बुनियादी सीमित सुविधाएं भी छिनती चली जा रही हैं। शिक्षा व चिकित्सा जैसी मूलभूत चीजों से सरकार अपना हाथ खींचकर उसे पूरी तरह बाज़ार और मुनाफे की वस्तु बनाती जा रही है। मुनाफे की अंधी हवस में खतरनाक और प्रतिबंधित दवाएं बड़े पैमाने पर आम जनता को खिलायी जा रही हैं। सरकार का स्वास्थ्य बजट लगातार कम होता जा रहा है। सरकारी अस्पतालों व स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थिति लगातार दयनीय होती जा रही है, जबकि कुकुरमुत्ते की तरह नित नये प्राइवेट नर्सिंग होम खुलते जा रहे हैं। सबसे बड़ा मानवीय पेशा अधिक से अधिक अमानवीय होता जा रहा है।

"उदारीकृत" नीतियों के लागू होने से पूर्व इस देश के पूंजीपति जो काम पर्दे के पीछे से करते थे, आज वे उसे खुलेआम करने लगे हैं। देश की शीर्ष पूंजीवादी संस्थाएं फिक्की, सी.आई.आई., एस्सोचेम व वैश्विक लुटेरी संस्थाएं - विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व व्यापार संगठन अपनी "मैनेजिंग कमेटी" देश की सरकारों को मुनाफा केन्द्रित नीतियां लागू करने के लिए सीधे निर्देश ज़ारी कर रही हैं। हालात ये बन चुके हैं कि शिक्षा क्षेत्र हो या चिकित्सा, पूंजीपतियों की अध्यक्षता वाली कमेटियों द्वारा ही परिवर्तन के नये ड्राफ्ट तैयार हो रहे हैं। शिक्षा नीति की तरह 'स्वास्थ्य सेवा में सुधारों के नीतिगत प्रारूप' के सुझावों को भी सूत्रबद्ध करने का काम देश के दो शीर्ष पूंजीपतियों - मुकेश अंबानी व कुमार मंगलम बिड़ला की अध्यक्षता वाली कमेटी ने किया।

बिड़ला-अम्बानी कमेटी द्वारा निर्मित 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति प्रारूप-2001' में जहां एक तरफ देश में चिकित्सा की दयनीय स्थिति पर घड़ियाली आंसू बहाये गये हैं। वहीं समाधान के तौर पर इसे भी निजी क्षेत्र के हवाले करने की पेशकश की गयी है। प्रारूप में यह स्वीकार किया गया है कि जीडीपी के प्रतिशत के तौर पर सरकार का स्वास्थ्य पर खर्च 1990 के 1.3 प्रतिशत से घटकर 1999 में 0.9 प्रतिशत रह गया। गौरतलब है कि विकसित पूंजीवादी देशों में यह खर्च 8 प्रतिशत है। हालांकि स्वास्थ्य नीति के इस प्रारूप में यह भी स्वीकार किया गया है कि देश का वर्तमान स्वास्थ्य सम्बन्धी बुनियादी ढांचा आम जनता की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बेहद कम है।

जैसा कि मुनाफाखोरों से उम्मीद थी, समाधान के तौर पर वे इसको निजी हाथों में सौंपने की ही वकालत कर सकते थे। अंबानी-बिड़ला का प्रस्ताव है कि स्वास्थ्य प्रणाली को और ज्यादा निजी हाथों में सौंपते हुए इसके विकास के लिए विदेशी पूंजी को आकर्षित किया जाए। निजी मिल्कियत वाले बड़े अस्पतालों को विकसित किया जाये। इस क्षेत्र में निजी बीमा कम्पनियों के निवेश को प्रोत्साहित किया जाये। सरकारी धन से चलने वाले चिकित्सा शोध पर सन् 2005 तक चिकित्सा पर कुल खर्च का महज एक प्रतिशत तक व्यय करने का प्रस्ताव है। प्रारूप में यहां तक कहा गया है कि हर चरण में उपभोक्ता शुल्क (यूजर चार्जेज) लागू हो। उल्लेखनीय है कि देश के विभिन्न प्रदेशों में सरकारी अस्पतालों में पर्चा बनवाने से लेकर बेड, जांच, आप्रेशन तक तमाम मदों में मरीजों से दो वर्षों से भारी शुल्क वसूले जा रहे हैं। उत्तरप्रदेश सहित तमाम राज्यों में प्रति वर्ष 10 प्रतिशत की दर से इनमें वृद्धि जारी है।

देश में 1983 में घोषित स्वास्थ्य नीति में प्राथमिक स्वास्थ्य की आवश्यकता पर जोर देते हुए यह घोषित किया गया था कि "भारत व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य सुरक्षा सेवाओं के सर्वव्यापी प्रावधान के जरिए 'सन् 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य के लक्ष्य' को प्राप्त करने को कृत संकल्प है।" और हुआ इसके विपरीत। प्राथमिक व सामुदायिक स्वास्थ्य सुविधाएं लगातार दयनीय होती गयीं और स्वास्थ्य नीति के इस नये प्रारूप में पूरी तरह उपेक्षित हो गयीं। इस पूरे दौर में पूरे चिकित्सा क्षेत्र में विश्व बैंक की भागीदारी बढ़ती गयी और इस क्षेत्र में भी नीतिगत परिवर्तनों का दबाव बढ़ता गया। यही नहीं, देश में सस्ती दवा उपलब्ध कराने की गरज से स्थापित हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स लि. (एच ए एल), इण्डियन ड्रग्स एण्ड फार्मास्यूटिकल्स लि. (आईडीपीएल), उत्तर प्रदेश ड्रग्स लि. (यूपीडीएल) आदि व निजी कम्पनियों बंगाल इम्यूनिटी, बंगाल कैमिकल्स, स्मिथ स्टानिस्ट्रीट आदि के राष्ट्रीकरण के बाद उन्हें इस दौर में उपेक्षित किया जाने लगा और इनमें से ज्यादातर को बंदी के कगार पर पहुंचा दिया गया या बन्द कर दिया गया या फिर निजी हाथों में लीज पर सौंप दिया गया। इससे जहां भारी पैमाने पर सस्ती दवायें मिलनी बन्द हो गयीं वहीं बड़ी संख्या में मज़दूर, टैक्नीशियन फार्मेसिस्ट व वैज्ञानिक बेरोजगार हो गये।

आजादी के बाद एक वक्त ऐसा था जब इस देश में दवाओं की कीमत पूरी दुनिया के पैमाने पर सबसे कम थी। यह वह दौर था जब देश में जनसंघर्षों का जोर था। सन् 1970 तक केन्द्र सरकार ने सभी दवाओं को मूल्य नियंत्रण में रक्खा था। लेकिन जैसे जैसे संघर्षों में गिरावट आती गयी, मुनाफाखोरों के हमले तेज होते गये और वस्तुओं के साथ ही दवायें भी मूल्य नियंत्रण से बाहर होती चली गयीं। उन्हें बाजार के हवाले कर दिया गया। सन् 1978 में घोषित पहली दवा नीति के तहत 387 दवाओं को 'दवा मूल्य नियंत्रण आदेश' (डीपीसीओ) द्वारा मूल्य नियंत्रण के दायरे में रखा गया। इसका निजी दवा कम्पनियों, विशेषतया बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने जमकर विरोध किया। कइयों ने अदालत का दरवाजा खटखटाया तो कइयों ने कई आवश्यक दवाओं का उत्पादन बंद कर दिया।

निजी कम्पनियों के दबाव में सन् 1986 में डीपीसीओ ने मूल्य नियंत्रण के दायरे को घटाकर 167 दवाओं तक सीमित कर दिया। परिणामत: कई आवश्यक दवाओं की कीमतें एकाएक छलांग लगाकर बढ़ गयीं और जिसमें बढ़ोत्तरी लगातार जारी है। यही नहीं कि डीपीसीओ ने 1994 में मूल्य नियंत्रण घटाकर महज 63 दवाओं तक सीमित कर दिया। अभी पिछले वर्षों में डीपीसीओ ने मूल्य नियंत्रण के प्रश्न पर एक कमेटी का गठन किया। कमेटी ने अन्तत: यह सिफारिश कर दी है कि 'भारत में दवाओं के दामों पर केवल वैचारिक नियंत्रण होना चाहिए।' मजेदार बात यह है कि सर्वोच्च न्यायालय तक ने यह माना है कि तमाम कम्पनियां (जिनमें ग्लैक्सो, "फ्लैजर, हैक्स्ट, बोहरिंगर जैसी जानी मानी कम्पनियां भी हैं) धोखाधड़ी से अपनी दवाओं की कीमतें बढ़ा-चढ़ा कर रखती हैं। उच्चतम न्यायालय ने इन कम्पनियों से 200 करोड़ रुपये वसूलने तक का निर्देश दिया था, लेकिन लम्बा समय बीत जाने के बावजूद यह रकम तो सरकार वसूल नहीं पाई बल्कि इसके विपरीत कम्पनियों की धोखाधड़ियां जारी रहीं और वे जनता से दवा की मनमानी कीमत वसूलती रहीं। विभिन्न बीमारियों के लिए दवा के 820 से अधिक ब्रांडो के एक अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार पिछली शताब्दी के अंतिम कुछ वर्षों में कुछ महत्वपूर्ण दवाओं की कीमत में 300 गुने की वृद्धि हुई है। यहीं एक और तथ्य गौरतलब है। डीपीसीओ की इस नीति पर कि जिस ब्राण्ड की वार्षिक बिक्री 4 करोड़ से अधिक हो पर मूल्य नियंत्रण लागू हो, को भी बढ़ाकर 20 करोड़ रुपयों की सीमा करने की सिफारिश नई दवा नीति के तहत की गयी है। मुनाफे की अंधी हवस में पगलाई कम्पनियां प्रतिबंधित व खतरनाक दवाएं भारी मात्रा में बेंच रही हैं 'आप्रेशनल रिसर्च ग्रुप' की आडिट के अनुसार देश में टीबी रोधी दवाओं या वैक्सीनों की अपेक्षा टॉनिक, पेन किलर, सेक्स हार्मोन्स आदि भारी मात्रा में बिकती हैं। कुछ ऐसी बीमारियों जैसे दस्त, सर्दी के संक्रमण, इन्फ्लूएंजा आदि के इलाज के लिए कोई दवा नहीं है। फिर भी भारी मात्रा में एंटीबायोटिक्स, एंटी एलर्जिक्स, विटामिन और टानिकों को इन बीमारियों के इलाज में इस्तेमाल किया जाता है। कई प्रतिबंधित दवाओं का इस्तेमाल तक होता है। पश्चिमी देशों की कई प्रतिबंधित दवाएं भारत में धड़ल्ले से बिक रही हैं।

किन्हीं अदालती पचड़ों के कारण यदि किसी दवा पर रोक लग जाती है, तो यहां भी ये कम्पनियां फार्मूला बदलकर उन्हें पुन: बाजार में उतार देती हैं। उदाहरण के रूप में विटामिन बी-1, बी-6, बी-12 का सम्मिश्रण प्रतिबन्धित हो गया तो कम्पनियों ने उसमें कुछ दूसरे विटामिन आदि मिलाकर नये सम्मिश्रण का उत्पाद बाजार में उतार दिया। ऐसी ही एक जर्मन कम्पनी 'ई मार्क' 'न्यूरोबियन फोर्ट' नाम से इस दावे के साथ कि 'न्यूरोबिअन न्यूरॉन्स' की संरचनात्मक और क्रियात्मक अक्षमता को बनाये रखती है" धड़ल्ले से बेंच रही है और इस दवा की वार्षिक बिक्री 35 करोड़ रुपये से ज्यादा है।

यही नहीं, एक ही दवा अलग-अलग कम्पनियों द्वारा विभिन्न ब्राण्ड नामों से बाजार में बिक रही है और उनकी कीमतों में काफी अन्तर रहता है। जैसे पेण्ट्राप्रोजाल-40 पैनडाक, पैन-40 और अन्य तमाम नामों से बिक रही हैं। जिनकी कीमत प्रति टैबलेट रु. 3.50 से लेकर रु. 6.50 तक है। इसी प्रकार सिट्रीजिन 10 गोली रु. 1.80 से 4.20 तक निमेसुलाइड 10 गोली रु. 14.50 से रु. 29.00 तक में बिकती हैं।

दवा एक, कीमत में दूने से ज्यादा तक का अन्तर, लेकिन मरीज वही दवा खरीदता है जो डाक्टर लिखकर देता है। डाक्टर किस ब्राण्ड को ज्यादा लिखता है व बेवजह कितनी फालतू दवाएं लिखता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस कम्पनी ने उक्त डाक्टर को ज्यादा "प्रभावित" कर लिया है। इसके लिए कम्पनियां डाक्टरों को रुपयों या तोहफों की पेशकश करती हैं। वे तरह-तरह से डाक्टरों को रिझाती हैं, दारू-डिनर पार्टियां आयोजित करती हैं और सीधे-सीधे सौदे तय करती हैं। सामान्य बात पर भी तमाम तरीके की जांचों, दवाओं और यहां तक कि ऑप्रेशन के दौर से भी मरीज का गुजरना आम बात है। कुकुरमुत्तों की तरह उगते प्राइवेट नर्सिंग होमों के जरिये ये लूट और ज्यादा खतरनाक तरीके से जारी है। इस प्रकार सबसे मानवीय पेशे द्वारा मुनाफे की अंधी हवस में, इंसानी जिंदगी का सौदा होता रहता है। पानी तक बेचकर मुनाफा बटोरने वाली कम्पनियों द्वारा बोतल बंद पानी में गामा एच सी एच, डीडीटी, मलायियान, फ्लोरपाडरीफॉस जैसे खतरनाक रसायनों का सम्मिश्रण तक बेचा जा रहा है।

दुनियाभर के कफनखसोट महज इतने से संतुष्ट नहीं हैं। भारत सरकार ने देशी व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित में 'फार्मास्यूटिकल पॉलिसी 2001' बनाई है, जो 'ड्रग प्राइज कन्ट्रोल रिव्यू कमेटी' (जिसने दवा के दामों पर वैचारिक नियंत्रण की बात की है) व 'फार्मास्यूटिकल रिसर्च एण्ड डेवलपमेण्ट कमेटी' के रिपोर्ट के आधार पर तैयार हुई है। इससे देश में देशी व बहुराष्ट्रीय कम्पयियों को किसी भी प्रकारकी दवा बनाने की खुली छूट मिल चुकी है। इन कम्पनियों को शोध के लिए धन मुहैय्या कराने के लिए 150 करोड़ रुपये से एक संग्रह कोष (कार्पस फण्ड) बनाने का निर्णय हो चुका है। इन अनुसंधानों का पूरा बोझ जनता उठायेगी और उसका पेटेण्ट उन कम्पनियों का होगा जो शोध करेंगी। इसका भी प्रस्तावित मानक यह है कि जिस कम्पनी में कम से कम 100 शोध वैज्ञानिक हों व कम से कम उनके पास दस पेटेण्ट मौजूद हों, उन्हें ही इस फण्ड के इस्तेमाल का हक होगा। जाहिरा तौर पर इसका लाभ उठाएंगे बड़े मगरमच्छ और जनता के हिस्से में होंगी महंगी दवाइयां।

(पेज एक से आगे)

हथियारों के सबसे बड़े जखीरे पर बैठे अमेरिकी लुटेरे

छात्र-युवा आन्दोलन भी फूट पड़ा था। लाखों की तादाद में छात्रों-नौजवानों का सैलाब चे-ग्वेरा और माओ का बैज-बिल्ला लगाये सड़कों पर उमड़ पड़ा था। यह सिलसिला लगभग साल भर तक चलता रहा था।

और अब तीन दशक बीतने के बाद पिछले कुछ महीनों से इराक युद्ध के विरोध में लगातार जो प्रदर्शन चल रहे हैं उन्होंने उन उथल-पुथल भरे दिनों की स्मृतियां ताजा कर दी हैं। दरअसल पिछले एक दशक से जिस साम्राज्यवादी कहर को दुनिया की जनता ने भुगता है, जो असन्तोष, घुटन, क्रोध अन्दर ही अन्दर फैल रहा था उसे एक दरवाजा मिल गया है। फिलिस्तीन, अफगानिस्तान के बाद जब इराक के मामले ने तूल पकड़ा है तो एक बार फिर तीन दशक पहले की स्मृतियाँ ताजा हो उठी हैं।

यह सही है कि सड़कों पर होने वाले प्रदर्शनों से व्यवस्था नहीं बदली जाती है लेकिन यह भी सच है कि इस तरह के स्वतःस्फूर्त आन्दोलन आने वाले तूफान की पूर्वसूचना दे जाते हैं। ये आन्दोलन जनता को उसकी शक्ति का अहसास कराते हैं और इन्हीं अनुभवों से जनता संगठित होने की जरूरत महसूस करती है और संगठित करनेवाले हरावलों की बात पर कान देना शुरू करती है।

इस नजरिये से देखा जाये तो इराक पर ताजा अमेरिकी हमले और समूचे मध्यपूर्व के संकट का ऐतिहासिक महत्व है। बात यह है कि बीती हुई बीसवीं सदी के दौरान विगत 25-30 वर्षों के भीतर साम्राज्यवाद की अन्दरूनी संरचना में कुछ बुनियादी परिवर्तन हुए हैं और इसके लाजिमी नतीजे के तौर पर विश्व पूँजीवादी तंत्र के ढांचागत संकट की परिघटना अस्तित्व में आयी है। इस कालखण्ड में विश्व राजनीति के पटल पर विश्व पूँजीवादी तंत्र के तमाम अन्तरविरोध घनीभूत होकर मुखर रूप में सतह पर आ गये हैं।

आज इराक पर ताजा हमले के खिलाफ फ्रांस, जर्मनी, रूस, बेल्जियम जैसे साम्राज्यवादी देशों ने अमेरिका के खिलाफ जितना मुखर विरोध दिखाया है वह इस बात का संकेत है कि आने वाले दिनों में साम्राज्यवादी देशों की आपसी होड़ और अधिक तीखी होगी। हो सकता है कि फिलहाली तौर पर अमेरिकी अपने इन पश्चिमी बिरादरों को चुप लगा जाने के लिए बाध्य कर दे लेकिन भविष्य में साम्राज्यवादी डाकुओं को इस बिरादरी के बीच लूट के माल के बंटवारे के लिए घमासान होना तय है। कहने की जरूरत नहीं कि भूमण्डलीकरण के दौर में साम्राज्यवाद की 'एकध्रुवता' का मिथक अपने आप चकनाचूर होता जा रहा है। इराक मसले पर संयुक्त राष्ट्र संघ के भीतर जो उठापटक हो रही है वह भी इस मिथक के टूटने की नजीर पेश कर रहा है। अमेरिका के साथ अकेले ब्रिटेन खड़ा नजर आ रहा है और फ्रांस, रूस, चीन ने इराक पर हमले की मंजूरी देने वाले अमेरिका-ब्रिटेन के प्रस्ताव पर 'वीटो' की धमकी तक दे दी थी।

पिछले सभी साम्राज्यवादी युद्धों की तरह इस बार भी अमेरिकी लुटेरे अपनी लड़खड़ाती अर्थव्यवस्था को नये सिरे से खड़ा करने का मंसूबा पाले हुए हैं। लुटेरे युद्धों का खूनी तर्क ही ऐसा है कि जब उत्पादक शक्तियों का नाश होता है, लोग मरते हैं तो अर्थव्यवस्था का संकट थोड़ा कम हो जाता है। तेल स्रोतों पर कब्जा जमाकर, हथियार उद्योग में नयी जान फूंककर और युद्ध के बाद 'पुनर्निर्माण' के काम में रुकी पड़ी पूँजी को झोंककर अमेरिकी लुटेरे अपनी अर्थव्यवस्था को संजीवनी देने का सपना देख रहे हैं। लेकिन इस बार यह उनके लिए बेहद महंगा साबित होने वाला है। इससे दुनिया की जनता बनाम साम्राज्यवाद का अन्तरविरोध भविष्य में अभूतपूर्व रूप से तीखा उठेगा।

इराक युद्ध से उत्पन्न तेल संकट को देखते हुए तीसरी दुनिया के पूँजीपति शासक वर्गों के बीच आज जो एकजुटता दिख रही है वह भविष्य में बड़ी पूँजी और छोटी पूँजी के बीच के अन्तरविरोधों को भी मुखर बनाती जायेगी। यह स्थिति उन लोगों के लिए आँख खोलने वाली है जो आर्थिक नव उपनिवेशवाद के मौजूदा दौर में तीसरी दुनिया के शासक वर्गों की घुटनाटेकू नीतियों को स्थायी परिघटना मान बैठे थे। दरअसल, ऐसा होता ही है कि जब बड़े लुटेरे लड़ते हैं तो छोटे लुटेरे अपनी स्वतंत्रता-स्वायत्तता की चौहद्दी बढ़ा देते हैं। जैसे ही यह स्थिति पैदा हुई है वैसे ही तीसरी दुनिया का शासक वर्ग थोड़ा मुखर हुआ है। लेकिन यह भी तय है कि अगर तेल संकट गहराता है तो इसकी मार ये ही सबसे ज्यादा झेलेंगे। और यह भी तय है कि अपने-अपने देशों में वे जनता पर अपने संकट का अधिक से अधिक बोझ लादने की कोशिश करेंगे। इसका नतीजा भी बेशक इसी रूप में सामने आना तय है कि तीसरी दुनिया के बुर्जुआ शासक वर्गों के खिलाफ जनता का अन्तरविरोध भी उग्र रूप अख्तियार करता जायेगा।

कहने का मतलब यह नहीं कि यह सब कुछ इराक प्रकरण की वजह से हो रहा है। दरअसल, फिलिस्तीन, अफगानिस्तान के मसले पर और पिछले एक दशक से जारी लुटेरी साम्राज्यवादी नीतियों से दुनिया की जनता की साम्राज्यवाद के खिलाफ नफरत की जो आग धधक रही थी इराक युद्ध ने उसे और हवा दे दी है। तीसरी दुनिया के बुर्जुआ शासक वर्ग भी विश्व पूँजीवादी तंत्र से नाभिनालबद्ध होकर जनता के ऊपर जिन लुटेरी आर्थिक नीतियों को थोप रहे थे, उससे जनता के भीतर जो गुस्सा उबाल ले रहा था, इराक हमले ने उसे बाहर आने का मौका दे दिया है। इराक मसले की आज एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक भूमिका बन रही है जो आने वाले दिनों में ऊपर वर्णित तमाम बुनियादी अन्तरविरोधों को खोलने का काम करेगा।

आज इराक युद्ध के खिलाफ तीसरी दुनिया के शासक वर्गों की जो एकजुटता दिख रही है उसमें वियतनाम युद्ध के समय से एक महत्वपूर्ण भिन्नता यह है कि आज कोई राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग जैसा कोई वर्ग नहीं मौजूद है जो जनता के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में उसके साथ खड़ा होगा। आर्थिक नव उपनिवेशवाद के इस दौर की यह एक महत्वपूर्ण विशिष्टता है। आज तीसरी दुनिया के देशों का समूचा बुर्जुआ वर्ग जनता के खिलाफ खेमे में खड़ा होकर बड़े बिरादरों से लूट के माल में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए अपनी एकजुटता दिखा रहा है। आने वाले दिनों में जैसे-जैसे विश्व पूँजीवादी तंत्र का संकट और गहरायेगा तीसरी दुनिया की जनता अपने लुटेरे बुर्जुआ शासक वर्गों और उनके बड़े बिरादरों के साथ पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति का परचम लिये सड़कों पर होगी। मौजूदा स्थितियाँ इसका साफ पूर्वसंकेत कर रही हैं।

इराक पर हमले के जरिये यह जो मदमत्त हाथी गहरे दलदल में पैर रख चुका है यह अमेरिका नहीं वस्तुतः साम्राज्यवाद का मदमत्त हाथी है। इराक पर अमेरिकी हमला अमेरिका ही नहीं समूचे साम्राज्यवादी विश्व तंत्र के लिए काफी महंगा साबित होने वाला है। पिछले खाड़ी युद्ध में इराकी जनता पर कहर बरपा करने के बाद, संयुक्त राष्ट्र प्रतिबन्ध की आड़ में साम्राज्यवादी हत्यारों की विनाशलीला अभी खत्म भी नहीं हुई थी कि इराकी जनता पर यह नया कहर टूट पड़ा है। हमें समूची दुनिया की जनता के साथ मिलकर इराकी जनता के साथ क्रान्तिकारी एकजुटता प्रदर्शित करनी चाहिए और इराकी जनता के कत्लेआम का पुरजोर विरोध करना चाहिए। साथ ही हमें आज ही अपने दूरगामी ऐतिहासिक कार्यभार को पूरा करने के लिए पूरी ताकत लगाकर जुट जाने का संकल्प लेना होगा। यह दूरगामी काम है, साम्राज्यवाद को तबाह करने वाली विश्व क्रान्ति में अपनी भूमिका निभाना। सभी युद्धों और सभी तबाहियों के इस मूल स्रोत को क्रान्तिकारी युद्ध द्वारा तबाह कर डालना ही एकमात्र विकल्प है।

(पेज एक से आगे)

पूँजीपतियों के मक्कार मुनीम की लफ्फाजी

ड्रिंक्स आदि के साथ-साथ एयरकण्डीशनर व कारें सस्ती होने की घोषणा की जा रही है। सबसे पहली बात तो यह है कि उत्पाद शुल्क में हुई कटौती का एक बड़ा हिस्सा सीधे-सीधे इन मालों के उत्पादक पूँजीपतियों की तिजोरियों में चला जायेगा। शुल्क में कमी का थोड़ा सा हिस्सा ही घटी कीमतों के रूप में खरीदारों को मिल सकेगा। दूसरे, असल देखने की बात यह है कि इनमें से कितनी वस्तुएँ ऐसी हैं जो गरीब एवं औसत मध्यवर्ग के रोजमर्रे के खर्चे के हिस्से हैं। कार-ए. सी. कौन सी गृहिणियाँ खरीदेंगी? कोल्ड ड्रिंक्स से गला कौन तर करेगा? किनके खाने की मेजों पर नये-नये मॉडल के बर्तन चमचमाएँगे? जाहिर है कि उत्पाद शुल्क में कटौती का अधिकांश फायदा कार-ए सी वाली गृहणियों को ही मिलेगा।

कार-ए. सी. वाले उच्च मध्यवर्ग और खुशहाल मध्यवर्ग के लिए वित्तमंत्री ने और भी कई मेहरबानियाँ की हैं। आयकर की दरों में इस साल कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। मकान बनवाने के लिए कर्ज लेने पर मिल रही आयकर छूट इस बार भी जारी रहेगी। साथ ही शेयर होल्डरों के लाभांश को भी करमुक्त कर दिया है। उच्च मध्यवर्ग के बुजुर्गों को आयकर छूट सीमा को 15 हजार रुपये से बढ़ाकर 20 हजार रुपये कर दिया गया है। दो बच्चों की पढ़ाई पर सालाना बारह हजार रुपये खर्च पर भी आयकर से छूट मिल गयी है।

यूँ तो वित्तमंत्री महोदय ने केलकर समिति की कर ढाँचे को सरल बनाने सम्बन्धी अनेक सिफारिशों को मान लिया है पर खेती से होने वाली आय पर कर लगाने का साहस वह नहीं जुटा पाये। हालाँकि राजस्व से होने वाली आय की पतली हालत को देखते हुए सरकार इस सिफारिश को लागू करने का मन बना रही थी लेकिन सरकार में शामिल क्षेत्रीय घटक दलों के दबाव में सरकार ऐसा नहीं कर पायी। दरअसल, सरकार में शामिल अकाली दल, इण्डियन नेशनल लोकदल, द्रमुक आदि क्षेत्रीय दल अपने-अपने राज्यों के फार्मरों-धनी किसानों के नुमाइन्दे हैं, जो खेती से मुनाफा कमाते हैं।

वित्तमंत्री महोदय वेतनभोगी वर्ग को दी गयी कुछ रियायतों का भी ढिंढोरा पीट रहे हैं। बजट में वेतनभोगियों के लिए आयकर में मानक कटौती की सीमा बढ़ा दी गयी है। साथ ही केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए एल.टी.सी. पर लगी रोक हटा ली गयी है। जाहिर है इस छूट का लाभ भी प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के सरकारी कर्मचारियों को ही मिलेगा।

मध्यवर्ग को झाँसा

ऊपरी तौर से देखने पर ये तमाम बजट प्रस्ताव मध्यवर्ग को लुभाने वाले हैं। पर असलियत यह है कि उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क में छूटों एवं कर राहतों का फायदा पूँजीपतियों और उच्च मध्यवर्ग को ही मिलेगा। औसत मध्यवर्ग को जो थोड़ा बहुत फायदा इन छूटों से मिल सकता था उसे भी बजट के दूसरे प्रस्तावों के जरिये छीन लिया गया है। दरअसल, जसवन्त सिंह ने 'इस हाथ दे उस हाथ ले' की बजटीय हाथ की सफाई दिखाते हुए मध्यवर्ग को झाँसा दे दिया है।

वित्तमंत्री महोदय ने इस बार रोजमर्रे के इस्तेमाल वाले डिब्बा बन्द खाद्य तेलों की कीमतों में बढ़ोत्तरी कर दी है। साथ ही विभिन्न सेवाओं पर लगने वाले शुल्क को पाँच से बढ़ाकर आठ प्रतिशत कर दिया है और दस नयी प्रकार की सेवाओं को शुल्क के दायरे में समेट लिया है। इनमें कोचिंग सेण्टर, कॉल सेण्टर, कंसल्टेंसी सेवाएँ आदि शामिल हैं। पहली अप्रैल के बाद जब टेलीफोन, बिजली, पानी आदि के बिल मध्य वर्ग की टेबुल पर आयेंगे और कुल जोड़-घटाव किया जायेगा तब वित्तमंत्री की असली जादूगरी पता चलेगी। इसके साथ ही लोक भविष्य निधि (पी पी एफ) और छोटी बचतों पर मिलने वाली ब्याज दर को भी एक फीसदी कम कर दिया है। पेट्रोल और डीजल की कीमतों में हुई बढ़ोत्तरी को इसमें जोड़ दिया तो जसवन्त सिंह की असली करामात का भाँडा फूटेगा।

गरीबों से गन्दा मज़ाक

'गरीबों के पेट में दाना' मुहैय्या कराने की सस्ती जुमलेबाजी की आड़ में जसवन्त सिंह ने गरीब मेहनतकश आबादी के साथ गन्दा मज़ाक किया है। पहली अप्रैल से अन्त्योदय योजना के विस्तार की घोषणा की गयी है। कहा गया है कि 50 लाख और गरीब परिवारों को इसमें समेटा जायेगा। इसके लिए सरकारी खजाने से काँख-कूँखकर 507 करोड़ रुपये निकाले गये हैं। इसी के बूते पर दावा किया जा रहा है कि गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाली एक चौथाई आबादी इस जद में आ जायेगी। वाह! कितनी बड़ी दरियादिली दिखायी है जसवन्त सिंह ने! गरीब मेहनतकश आबादी को रोजगार कैसे मिले, जिससे एक सम्मानजनक इंसानी जिन्दगी गुज़र-बसर हो सके, इसकी चिन्ता पूँजीपतियों के मक्कार मुनीम को भला क्यों हो? खैरात बाँटकर 'पुण्य' कमाने और दानवीर कहलाने का सुख भला कैसे मिलेगा?

गरीबों के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना लागू करने की डुग्गी भी पीटी जा रही है। असलियत यह है कि जनता के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी से पल्लू झाड़ लेने के बाद गरीबों के स्वास्थ्य की नकली चिन्ता जताकर बीमा कम्पनियों को लूटने का एक और रास्ता बना दिया गया है।

निजीकरण-"उदारीकरण" की डगर पर अगला कदम

अगले लोक सभा चुनावों के मद्देनजर वित्तमंत्री महोदय ने अपनी तरफ से चुनावी बजट बनाने की भरपूर कोशिश की है, लेकिन भूमण्डलीकरण के तकाजे से मजबूर बेचारे जसवन्त सिंह कुछ खास कमाल दिखा नहीं पाये। आज विश्व पूँजीवाद संकट के उस मुकाम पर पहुँच चुका है कि जनता को खैरात बाँटने की उसकी औकात ही कम हो गयी है। इसीलिए आज दुनियाभर की पूँजीवादी सरकारें शिक्षा, स्वास्थ्य आदि 'लोक कल्याणकारी' खर्चों में कटौतियाँ करती चली जा रही हैं और सब कुछ को बाजार के हवाले किया जा रहा है। पिछले बारह सालों से हमारे देश की सरकारें भी यही कर रही हैं। जसवन्त सिंह भी भूमण्डलीकरण की इसी डगर पर चले हैं। इसीलिए चुनावी बजट में भी चुनावी चिन्ता के बजाय निजीकरण- 'उदारीकरण' की नीतियों को आगे बढ़ाने और देशी-विदेशी पूँजीपतियों को खुश करने की चिन्ता हावी है।

जनता के खून-पसीने के दम पर खड़े किये सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को औने-पौने दामों पर बेचने की प्रक्रिया को नये बजट प्रस्तावों से नयी जान मिलेगी। अगले वित्त वर्ष के लिए विनिवेश से (यानी सरकारी उद्यमों को बेचने से) 12000 करोड़ रुपये हासिल करने का लक्ष्य रखा गया है। इस रकम को अगर बुनियादी ढाँचे का निर्माण करने में भी खर्च किया जाता तो गनीमत होती। पर यह रकम खर्च होगी अफसरशाही और नेताशाही का पेट भरने में। बजट में बुनियादी ढाँचे का विस्तार करने के लिए नयी सड़कें बनाने, रेल पटरियाँ बिछाने और हवाई अड्डों-बन्दरगाहों का निर्माण करने की जिन परियोजनाओं की घोषणा की गयी है उनके खर्चे का अधिकांश हिस्सा पेट्रोल और डीजल पर लगाये गये विशेष शुल्क से जुटाया जायेगा, यानी यह बोझ भी जनता की छाती पर।

राजग सरकार के घटक दलों (फार्मर लॉबी) के दबाव में हालाँकि रासायनिक खादों पर दी जाने वाली सब्सिडी में कटौती वापस ले ली गयी है, पर यह अतिरिक्त बोझ भी अगले कुछ महीनों में किसी न किसी बहाने जनता पर ही थोप दिया जायेगा। वैसे अब बजट की असलियत यह हो चुकी है कि आम जनता के लिए इसका कोई खास मतलब नहीं रह गया है। आम जनता की जरूरत की अधिकांश कीमतों में असली बढ़ोत्तरी तो दो बजटों के बीच होती है। भूमण्डलीकरण का दौर शुरू होने के बाद बजट प्रस्तावों की असली कवायद तो सिर्फ इस बात के लिए होती है कि देशी-विदेशी पूँजी की लूट के कौन-कौन से नये रास्ते खोले जायें और संकटग्रस्त पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए कौन-कौन से कदम उठाये जायें।

इस बजट में भी वित्तमंत्री महोदय की सारी कवायद इसी बात पर केन्द्रित है। मध्यवर्ग को करों में रियायत देने और बचत पर ब्याज दर में कटौती करने के पीछे असली मंशा यह है कि लोगों को बचत की बजाय खर्च के लिए प्रोत्साहित किया जाये, जिससे माँग बढ़ाकर विभिन्न सेक्टरों में छायी औद्योगिक मन्दी से उबरने में मदद मिले। लेकिन समूची दुनिया की पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ आज एक भीषण उलझाव में फँसी हुई हैं। माँग बढ़ाने के लिए किये जाने वाले तात्कालिक राहतों के उपाय अर्थव्यवस्था को कोई खास संजीवनी नहीं दे पाते। स्थायी माँग तो तभी पैदा हो सकती है जब रोजगार के अवसर बढ़ें पर "रोजगार विहीन विकास" के इस भूमण्डलीय दौर में यह भला मुमकिन कहाँ? जसवन्त सिंह ने भी अपने बजट में एक भी प्रस्ताव ऐसा नहीं रखा है जिससे नये रोजगार पैदा हो सकें। उल्टे स्वैच्छिक रिटायरमेण्ट योजना (वी.आर.एस.) के तहत मिलने वाली पाँच लाख रुपये की राशि को कर मुक्त करने की घोषणा कर लोगों को स्थायी रोजगार से छुटकारा देने का लालच दिया है।

जसवन्त सिंह बजट के जिन प्रस्तावों के जरिये "कृषि क्रान्ति" करने की लफ्फाजी कर रहे हैं वह भी दरअसल देशी-विदेशी बीज-खाद कीटनाशक दवाओं की कम्पनियों को मुनाफा पहुँचाने और कारपोरेट खेती को बढ़ावा देने की ही कोशिश है। कृषि उत्पादन ढाँचे में बदलाव करने का मतलब ही यही है कि परम्परागत अन्न उत्पादन के बजाय फूलों की खेती, बागवानी आदि गैर परम्परागत नयी फसलों को बढ़ावा देना। इससे भविष्य में खाद्यान्न संकट भी पैदा हो सकता है।

विशेष सामग्री

(चौबीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय – 8

पार्टी अनुशासन

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर ज़ोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में वोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में चौबीसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

– सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

पार्टी अनुशासन को सही ढंग से लागू करो

पार्टी का संविधान कहता है: "यदि पार्टी सदस्य पार्टी अनुशासन का उल्लंघन करते हैं, तो सम्बन्धित स्तरों की पार्टी-संगठन अपने कर्तव्यों और अधिकारों के अन्तर्गत और प्रत्येक मामले के गुण-दोष के आधार पर समुचित अनुशासनिक कार्रवाई करेंगे - चेतावनी, गम्भीर चेतावनी, पार्टी में पदों से हटाया जाना, पार्टी के अन्तर्गत प्रोबेशन पर (परिवीक्षाधीन) रखना, या पार्टी से निष्कासन।" हमारी पार्टी में अनुशासन का लक्ष्य महज दण्डित करना नहीं है, बल्कि सर्वोपरि तौर पर उन सदस्यों को शिक्षित करना और उनकी मदद करना है जिन्होंने ग़लतियाँ की हैं। यह पार्टी संगठन के सुदृढ़ीकरण में और इसके लक्ष्य की हिफ़ाजत करने में सहायक होता है। यही कारण है कि पार्टी ने हमेशा ही अनुशासन के सवाल पर अपने सदस्यों को खूब अधिक शिक्षा देने का काम किया है ताकि वे सचेतन तौर पर इसे सम्मान दें। जब पार्टी के किसी सदस्य के विरुद्ध कार्रवाई की जाये तो सबसे पहले और सर्वोपरि तौर पर यह जरूरी है कि उसके साथ तर्क किया जाये और उसे बार-बार शिक्षित किया जाये ताकि वह अपनी ग़लतियों को समझ सके और ईमानदारी से उन्हें ठीक कर सके।

पार्टी अनुशासन को लागू करते समय, यह जरूरी है कि हम भिन्न प्रकृति के अन्तरविरोधों की दो किस्मों के बीच सख़्ती से फ़र्क करें, उनमें से प्रत्येक के प्रति भिन्न दिशा अपनायें, उनके साथ अलग-अलग सुलूक करें, और सही ढंग से उन्हें हल करें। जहाँ तक साबित हो चुके गद्दारों, दुश्मनों के एजेण्टों, सत्ता पर काबिज किसी भी तरह से पश्चाताप न करने वाले पूँजीवादी रास्ते के राहियों तथा पतित और विजातीय वर्ग-तत्वों का सवाल है, उन्हें पार्टी से बाहर कर दिया जाना चाहिए और फिर से उन्हें वापस नहीं लिया जाना चाहिए। पार्टी के जिन सदस्यों ने ग़लतियाँ की हैं, यहाँ तक कि गंभीर ग़लतियाँ की हैं, उनके मामलों में हमें इन उसूलों को लागू करना चाहिए: **"भविष्य की ग़लतियों से बचने के लिए अतीत की ग़लतियों से सीखो; रोगी को बचाने के लिए रोग का इलाज करो,"** विचारधारात्मक आलोचना में कड़ाई बरतो, लेकिन सांगठनिक मोर्चे पर नरम रुख अपनाओ और अपनी गलतियों को ठीक करने में उनकी मदद करते हुए गम्भीर, सकारात्मक और गर्मजोशी भरा रवैया अपनाओ। यदि वे खुद को ठीक करने की ईमानदार भावना दिखलायें, तो हमें उनको विचारधारात्मक रूप से शिक्षित करने का काम करना चाहिए, तथा उनकी चेतना का स्तर ऊँचा उठाने में और अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा पर वापस लौटने में, उनकी मदद करनी चाहिए। पार्टी के जो सदस्य ग़लतियाँ करते हैं, उनका जनता पर भरोसा होना चाहिए, पार्टी में भरोसा होना चाहिए, उन्हें मेहनत से अपनी "चीरफाड़" करनी चाहिए, अपनी ग़लतियों का सचेतन रूप से विश्लेषण करना चाहिए, तीन महान क्रान्तिकारी आन्दोलनों के दौरान अपने विश्व दृष्टिकोण को बदलने के लिए संघर्ष करना चाहिए तथा जनता की नज़रों में एक बार फिर इज़्जत हासिल करने के लिए क्रान्ति जारी रखनी चाहिए। पार्टी सदस्यों की जिस अल्पसंख्या ने गम्भीर ग़लतियाँ की हैं, लेकिन खुद को ठीक करने से इंकार करती है उनके विरुद्ध परिस्थितियों के अनुसार समुचित अनुशासनिक कार्रवाई ज़रूरी है, जिसमें पार्टी से निष्कासन भी शामिल है।

जिन सदस्यों ने ग़लतियाँ की हैं, उनपर पार्टी अनुशासन लागू करते समय हमें गंभीर और विवेकवान होना चाहिए और हल्का आचरण नहीं करना चाहिए। अध्यक्ष माओ **"अलग-अलग कामरेडों के मामलों को निपटाते समय एक सावधानीपूर्ण रवैया अपनाने की, तथा न तो चीज़ों पर मुलम्मा चढ़ाने की और न ही कामरेडों को नुकसान पहुंचाने की. .."** *(हमारा अध्ययन और वर्तमान परिस्थिति, संकलित रचनाएँ, खण्ड-तीन)* बात करते हैं। गम्भीर और विवेकवान होने का मतलब यह नहीं है कि हम उन पार्टी सदस्यों की अवस्थितियों और गुणों से प्रभावित हो जायें जिन्होंने ग़लतियाँ की हैं, बल्कि यह है कि जब हम उनकी ग़लतियों से अवगत हों तो एक वैज्ञानिक रुख अपनायें और उनकी गम्भीरतापूर्वक आलोचना करें। लेकिन, मसले को हल करते समय हमें विवेकपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और सच्चे मायने में एक ज़िम्मेदार रुख अपनाना चाहिए। जब पार्टी सदस्य ग़लतियाँ करें, तो हमें एक सम्पूर्ण ऐतिहासिक विश्लेषण करना चाहिए और की गयी ग़लतियों को दिमाग़ में रखते हुए उन अच्छी चीज़ों को भी देखना चाहिए जो अध्यक्ष माओ और पार्टी के नेतृत्व के अन्तर्गत क्रान्ति में ऐसे सदस्यों का योगदान हों। हमें ग़लतियों की प्रकृति का ठोस विश्लेषण भी करना चाहिए और उन परिस्थितियों का भी ठोस विश्लेषण करना चाहिए जिनमें ये ग़लतियाँ हुई हों, हमें यह भी देखना चाहिए कि क्या ये ग़लतियाँ हमेशा सामने आती रही हैं, क्या ग़लतियाँ करने वाले लोगों ने अफसोस जाहिर किया है, और तथ्यों से सत्य का निगमन करते हुए, हमें नेतृत्व और जन समुदाय के बीच एकता की पद्धति के अनुसार ग़लतियों के प्रश्न को सही ढंग से हल करना चाहिए।

पार्टी अनुशासन लागू करते समय, हमें एकांगी होने के विरुद्ध, या तो ज़रूरत से अधिक सख्त या फिर ज़रूरत से अधिक नरम होने के विरुद्ध चौकसी बरतनी चाहिए।

ग़लतियाँ करने वाले पार्टी सदस्यों के मामलों को देखते समय, हमें निश्चय ही यह बात दिमाग में रखनी चाहिए कि उन्होंने ग़लतियाँ की हैं और पार्टी के लक्ष्य को ख़तरे में डाला है, लेकिन हमें यह बात भी दिमाग में रखनी होगी कि ऐसे अधिकांश लोग पार्टी के साथ क्रान्ति के काम में लगे रहना चाहते हैं। हमें यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि वे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों के लिए अपेक्षित मानकों पर पूरी तरह से खरे नहीं उतरते लेकिन हमें यह भी समझना होगा कि ऐसे लोगों की भारी बहुसंख्या पार्टी द्वारा दी गयी शिक्षा की मदद से अपनी ग़लतियों को ठीक कर सकती है और सर्वहारा हरावल की आदर्श भूमिका को निभाने का काम जारी रख सकती है। जब हम पार्टी अनुशासन लागू करते हैं तो हमें सर्वोपरि तौर पर, इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए। पार्टी सदस्यों द्वारा की गयी ग़लतियों पर फैसला लेते समय यह ज़रूरी होता है कि हम उसूलों की जगह स्वयंस्फूर्त भावनाओं को रख देने, किसी मामले के तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर देखने और हर कीमत पर विनियमों को लागू करने, तुरत-फुरत दण्डात्मक कार्रवाई करने या किसी व्यक्ति को बहुत अधिक हल्के-फुल्के ढंग से पार्टी से निष्कासित कर देने जैसी चीज़ों के खिलाफ़ चौकसी बरतें। लेकिन यह भी उतना ही ज़रूरी है कि हम अनुचित समझौते न करें, पार्टी सदस्यों के लिए अपेक्षित मानकों का अवमूल्यन न करें, और न ही उन्हें निष्कासित करने का काम न करें जिन्हें निष्कासित कर दिया जाना चाहिए या उन मामलों को हाथ में न ले सकें जिन्हें लिया जाना चाहिए।

आम तौर पर, पार्टी के सदस्यों के खिलाफ़ की जाने वाली अनुशासनिक कार्रवाइयों पर पार्टी शाखा की आम बैठक में विचार-विमर्श होना चाहिए। जिस सदस्य के विरुद्ध कार्रवाई प्रस्तावित हो रही हो, बैठक को उसे अवश्य ही यह मौका देना चाहिए कि वह अपनी ग़लती का विश्लेषण करे और उन आलोचनाओं को स्वीकार करे जो उसकी सहायता करने के उद्देश्य से की जा रही हैं। गहन विचार-विमर्श के बाद ही उन्हें कोई फैसला लेना चाहिए, और उसके बाद, अपने ठीक ऊपर के स्तर को अपने फैसले की सूचना दे देनी चाहिए। लिये गये निर्णय और अन्ततोगत्वा लागू की गयी किसी दण्डात्मक कार्रवाई की सूचना सम्बन्धित व्यक्ति को लिखित रूप से दे दी जानी चाहिए। जिस पार्टी सदस्य के खिलाफ फैसले लिये जाते हैं, यदि वह निष्कर्ष और दण्डात्मक कार्रवाई से सहमत नहीं है तो उसे यह अधिकार है कि वह एक बार फिर विचार-विमर्श के लिए कहे या ऊपर के निकायों तक अपनी शिकायत पहुँचाये जिसमें सीधे पार्टी की केन्द्रीय कमेटी तक को लिखना भी शामिल हैं। पार्टी संगठनों को पार्टी सदस्यों द्वारा सूत्रबद्ध शिकायतों को तेज़ी से निपटाना चाहिए और उन्हें कत्तई रोकना नहीं चाहिए या प्रतिशोधात्मक कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। यदि शिकायत न्यायसंगत है तथा निष्कर्ष एवं दण्डात्मक निर्णय यथार्थ से मेल नहीं खाते तो उन्हें तथ्यों के आधार पर ठीक कर लिया जाना चाहिए। यदि शिक़ायत न्यायसंगत नहीं हो, तो उक्त शिकायत को प्राप्त करने वाले पार्टी निकाय को अपनी व्याख्या ज़रूर प्रस्तुत करनी चाहिए ताकि ग़लतियाँ करने वाले व्यक्ति को उन्हें पहचानने और ठीक करने में सहायता दी जा सके। जाहिर है कि जिन पार्टी सदस्यों ने ग़लतियाँ की हैं और जिनके विरुद्ध दण्डात्मक कार्रवाई की गयी है उन्हें बिलावजह, महज परेशानी पैदा करने के लिए कोई बहाना नहीं ढूँढ़ना चाहिए।

निचोड़ के तौर पर पार्टी अनुशासन को लागू करना अत्यधिक गम्भीर राजनीतिक और विचारधारात्मक कार्य है जिसमें "लगभग" की कोई गुंजाइश नहीं हैं। अध्यक्ष माओ की शिक्षाओं के अनुरूप, हमें अन्तर्विवेक के साथ पार्टी उसूलों को लागू करना चाहिए, उन पार्टी सदस्यों को शिक्षित करना चाहिए जिन्होंने ग़लतियाँ की हैं और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि दूसरे सदस्य इस अनुभव से सबक़ हासिल करें।

(अगले अंक से नया अध्याय–पार्टी की "तीन महान कार्यशैलियाँ")

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा - लेनिन (5/-)

मकड़ा और मक्खी -बिल्हेल्म लीब्कनेख्त (2/-)

ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके -सर्जी रोस्तोवस्की (2/-)

अनवश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं (10/-)

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (12/-)

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 19 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेंजे :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, आईटी चौराहा, लखनऊ

तुम्हारे भगवान की क्षय

• राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन सच्चे अर्थों में जनता के लेखक थे। वह आज जैसे कथित प्रगतिशील लेखकों सरीखे नहीं थे जो जनता के जीवन और संघर्षों से अलग-थलग अपने-अपने नेहनीड़ों में बैठे कागज पर रोशनाई फिराया करते हैं। राहुल सांकृत्यायन हमेशा जनता के संघर्षों के बीच रहे। गोराशाही के खिलाफ संघर्ष का मोर्चा हो या सामन्तों-जमीन्दारों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ किसानों की लड़ाई का मोर्चा हो, वह हमेशा अगली कतारों में रहे। अनेक बार जेल गये। यातनाएं झेलीं। जमीन्दारों के गुर्गों ने उनके ऊपर कातिलाना हमला भी किया लेकिन आजादी, बराबरी और इंसानी स्वाभिमान के लिए न तो वह कभी संघर्ष से पीछे हटे और न ही उनकी कलम रुकी। राहुल सांकृत्यायन यूरोपीय पुनर्जागरण काल के उन महामानवों सरीखे महामानव थे जो एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में तलवार लेकर लड़ते थे।

दुनिया की छत्तीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन की अद्भुत मेधा का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, साहित्य की अनेक विधाओं में उनको महारत हासिल थी। इतिहास, दर्शन, पुरातत्व नृतत्वशास्त्र, साहित्य-भाषा विज्ञान आदि विषयों पर वह अधिकारपूर्वक लिखते थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, ललित निबन्ध, जीवनी, आत्मकथा डायरी आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अधिकारपूर्व लेखनी उठायी। वोल्गा से गंगा, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन दिग्दर्शन, मानव समाज, वैज्ञानिक भौतिकवाद, जय यौधेय, सिंह सेनापति, दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों, बाइसवीं सदी आदि पचास से अधिक रचनाएं उनकी महान प्रतिभा का परिचय अपने आप करा देती हैं।

लेकिन राहुल जी के लिए ज्ञान कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी और न ही वे विद्वान कहलाने के लिए लिखते थे। देश की शोषित-उत्पीड़ित जनता को हर प्रकार की गुलामी से आजाद कराने के लिए कलम को वह हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि "साहित्यकार जनता का जबर्दस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी है वह सिपाही भी है और सिपहसालार भी।"

राहुल सांकृत्यायन का समूचा जीवन और कर्म एक सतत प्रवाहमान धारा के समान था। गति उनके लिए जीवन का दूसरा नाम था और गतिरोध एवं मृत्यु जड़ता। इसीलिए बनी-बनायी लीकों पर चलना उन्हें कभी गवारा नहीं हुआ। वह नयी राहों के खोजी थे। यह अकारण नही था। कि घुमक्कड़ी उनके स्वभाव में रच-बस गयी थी। लेकिन घुमक्कड़ी उनके लिए सिर्फ भूगोल की पहचान करना नही थी। वह सुदूर देशों की जनता के जीवन व इसकी संस्कृतियों से उसकी जिजीविषा से जान-पहचान करने के लिए यात्राए करते थे।

समाज को पीछे की ओर धकेलने वाले हर प्रकार के विचार, रुढ़ियों, मूल्यों-मान्यताओं-परम्पराओं के खिलाफ उनका मन गहरी नफ़रत से भरा हुआ था। उनका समूचा जीवन व लेखन इनके खिलाफ विद्रोह का जीता-जागता प्रमाण है। इसीलिए उन्हें महाविद्रोही भी कहा जाता है। जनता के ऐसे ही सच्चे सपूत ***महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तिका 'तुम्हारी क्षय' बिगुल के पाठकों के लिए हम धारावाहिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं।*** *राहुल की यह निराली रचना आज भी हमारे समाज में प्रचलित रुढ़ियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष की ललकार है।*

- सम्पादक

लड़का माँ के पेट से ईश्वर का ख्याल लेकर नहीं निकलता। भूत, प्रेत तथा दूसरे संस्कारों की तरह ईश्वर का ख्याल भी लड़के को माँ-बाप तथा आसपास के सामाजिक वातावरण से मिलता है। दुनिया के धर्मों में बौद्ध धर्म के अनुयायी अब भी सबसे ज्यादा हैं, लेकिन उनके दिल में सृष्टिकर्ता का ख्याल भी नहीं उठता। रूस की नब्बे फीसदी जनता भी ईश्वर के फंदे से दूर हट चुकी है और अब कुछ बूढ़ों को छोड़कर यह ख्याल किसी को नहीं सताता। यह निश्चय है कि आज के बूढ़ों के मर जाने पर ईश्वर का नामलेवा वहाँ कोई नहीं रह जायेगा। हिन्दुस्तान में प्रार्थना-प्रदर्शनों और हरि-कीर्तनों को देखकर कुछ लोग समझते हैं कि ईश्वर का ख्याल फिर से जोर पकड़ रहा है। उन्हें मालूम नहीं कि जिन लोगों में ईश्वर-विश्वास है भी, उनमें भी अब उसकी व्यापकता बहुत कम हो गई है।

जिस समस्या, जिस प्रश्न, जिस प्राकृतिक रहस्य के जानने में आदमी अपने को असमर्थ समझता था, उसी के लिए वह ईश्वर का ख्याल कर लेता था। दरअसल ईश्वर का ख्याल है भी तो अन्धकार की उपज। प्रारम्भिक मनुष्य जब घर बनाकर नहीं रहता था, अपनी रक्षा के लिए जब उसके पास कुछ अनगढ़ पत्थरों के अतिरिक्त कुछ न था और साथ ही उस वक्त सारी भूमि जंगल से भरी थी जिसमें सिंह, बाघ, हाथी, भेड़िया आदि बड़े-बड़े हिंस्र पशु घूमा करते थे। दिन में भी वृक्षों के ऊपर चढ़कर, गुफाओं के भीतर छिपकर, बहुत सजग रहकर वह किसी तरह अपनी जान को बचाता था। अंधेरे में अपनी ताक में बैठे जन्तुओं का डर तो उसे बदहवास किये रहता था। इस प्रकार, वह अन्धकार मनुष्य के लिये आज तक भय का कारण बना हुआ है। हाँ, जब आगे चलकर मनुष्य ने भाषा का विकास किया, विचारों को प्रकट करने के लिए उसके पास कुछ शब्दकोश बना और जब हर पीढ़ी अपने अनुभवों की कटु स्मृतियों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने लगी तो वास्तविक की अपेक्षा कल्पना-जात भय की संख्या बहुत बढ़ गई। जीवन भर अपने बलिष्ठ शासक और नेता से मनुष्य थर-थर काँपता था। वह अपने आश्रितों के साथ बात की अपेक्षा लात से ही काम लेता था। इस साधारण शिक्षा-दीक्षा में कितने काने, कितने लँगड़े हो जाते और कितने जान से हाथ धो बैठते थे। ऐसे निर्दय स्वामी और मुखिया का भय उसके मरने के बाद भी लोगों के दिल से नहीं हटता था। मरने के बाद उसे वे अपनी बस्तियों में किसी वृक्ष पर या किसी चबूतरे पर अधिष्ठित मानने लगते थे। अंधेरा होने पर किसी वक्त उसके प्रकट होने का डर था। अज्ञात भय ने इस प्रकार देवता का रूप धारण किया। और ये ही विचार आगे चलकर महान देवता (महादेव) या ईश्वर के रूप में परिणत हुए।

प्रारम्भिक मनुष्य का मानसिक विकास अभी निम्न तल पर था। उसकी शंकाएँ हलकी और समाधान सरल थे। वर्षा क्यों होती है? पर्जन्य देवता के नेतृत्व में मेघ-समूह किसी जलाशय या पहाड़ में चरने जाते हैं, वह वहाँ से पानी लेकर पर्जन्य के आज्ञानुसार जगह-जगह बरसाते हैं। इन्द्र पर्जन्य का स्वामी है। वह कभी-कभी वज्र को चलाकर अपना रोष प्रकट करता है। यही अशनि या बिजली है। पहाड़ों की आकृति को मेघ से मिलते-जुलते देखकर उस समय लोग समझते थे ये पहाड़ ही हैं जो आकाश में मेघ के रूप में उड़ रहे हैं। उनके विश्वास में पर्वतों के पर भी होते थे जिन्हें इन्द्र ने नाराज होकर किसी समय अपने वज्र से काट दिया। प्रात:काल पूर्व दिशा में पौ फटने के साथ लाली क्यों छा जाती है? यह उषा, स्वर्ग की देवी का प्रताप है। उस वक्त सूर्य अपने प्रखर प्रकाश के कारण प्रचण्ड देवता था और वह सात घोड़ों के रथ पर त्रिभुवन की यात्रा के लिए निकलता था। आग के पास बड़े-बड़े हिंस्र पशु नहीं आ सकते। प्रकांड वृक्षों और महान जंगलों को यह धाँय-धाँय करके जला देती है। इसलिए अग्नि प्रत्यक्ष महान (ब्रम्ह) था, उसी को वे प्रत्यक्ष महान कहते थे। नदी, समुद्र सभी उस मनुष्य के लिए देवता थे, क्योंकि उनमें वे अमानुषिक (दिव्य) शक्ति पाते थे, नाश करने की भीषण योग्यता रखते थे। उनमें ऐसे-ऐसे अद्भुत रहस्य उन्हें दिखलाई पड़ते थे जिनकी गुत्थी को वह देवता की कल्पना से ही सुलझा सकते थे। मनुष्य ने प्राकृतिक शक्तियों में बहुदेववाद को अपने ज्ञान की सीमा के बहुत संकुचित होने के कारण स्वीकार किया था। अब हम जानते हैं कि बादल कैसे बनते हैं, कैसे बरसते हैं, कहाँ से किधर की यात्रा करते हैं। कौन-कौन से देश उनकी यात्रा-मार्ग में पड़ते हैं और कौन से दूर। बिजली बादलों में क्यों कर पैदा होती है? कड़क क्या है? सूर्य अब हमारे लिए घोड़ों के रथ का सवार नहीं रहा और न उसका वह गोल मुँह, दो आँखों और काली मूंछों वाला चेहरा ही रहा। उसकी यात्रा भी अब वह पहले वाली यात्रा नहीं रही, उषा देवी अब सूर्य की निम्नतर लाल किरण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आरम्भिक मनुष्य के लिए सूर्य आकाश का सबसे बड़ा विशाल और तेजस्वी देवता था। अब हम जानते हैं कि आकाश में चमकते हुए ये छोटे-छोटे तेजो बिन्दु उतने छोटे नहीं हैं जितने कि वे हमें दिखलाई पड़ते हैं। उनमें से अधिकांश हमारे सूर्य से भी लाखों गुने बड़े और तेजस्वी हैं। आकाश को अनन्त कहकर पूर्वजों ने उसके विस्तार का एक अन्दाजा लगा लिया था, लेकिन वह अत्यन्त वास्तविकता की भित्ति पर न होकर अधिकतर अज्ञान के आधार पर आश्रित था। प्रकाश की गति प्रति सेकेण्ड एक लाख अस्सी हजार मील है। आज तक जो तारा हमसे सबसे नजदीक मालूम हुआ है, वह इतनी दूर है कि उसकी किरण को हम तक पहुँचने में ढाई बरस लगते हैं। ध्रुव तारा हमसे बहुत दूर नहीं है, तो भी उसके जिस रूप को हम इस वक्त देख रहे हैं, वह आज से पचास बरस पहले का है। दस-दस बीस-बीस हजार बरस में अपनी किरणों को हम तक पहुँचाने वाले तारों की भारी संख्या से हमें आश्चर्य करने की जरूरत नहीं। नक्षत्र-मंडल में ऐसे भी तारे हैं जिनकी दूरी को किरणों की यात्रा के वर्षों की संख्या में बतलाना मुश्किल है। तारों, खगोल और प्राकृतिक जगत-सम्बन्ध की अपनी इस अज्ञानता को मनुष्य देवता और ईश्वर की आड़ में छिपाता था।

भूकम्प क्यों होता है? चिपटी धरती के महान भार को शेषनाग ने अपने कन्धे पर उठा रखा है। थककर वे जब उसे एक कन्धे से हटाकर दूसरे पर रखते हैं, तब भूकम्प आता है। आज कौन इस व्याख्या को मान सकता है? कौन चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण को राहु दैत्य का अत्याचार बतला सकता है? लेकिन किसी समय हमारे पूर्वजों के लिए ये बातें ध्रुव सत्य थीं। विज्ञान ने हमारे अज्ञान की सीमा को कितनी ही दिशाओं में बहुत संकुचित किया है, और, जितनी ही दूर तक हमारे ज्ञान की सीमा बढ़ती गई, वहाँ से ईश्वर और देवता वाला उत्तर हटता गया है। अब भी अज्ञान का क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है, लेकिन आज के मनीषी उसे साफ अज्ञान के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, न कि ईश्वर और देवता के पर्दे में उसे छिपाकर।

धर्मों, भाषाओं और कथानकों के तुलनात्मक अध्ययन से मालूम होता है कि सृष्टिकर्ता एक ईश्वर का ख्याल मनुष्य में बहुत पीछे से आया है। दुनिया की सबसे अधिक समुन्नत जातियाँ – यूनानी, रोमन, हिन्दू, चीनी, मिस्री आदि तो अपनी समृद्धि के मध्याह्नकाल तक इसे अपनाने के लिए तैयार नहीं हुई, और उनमें से यदि किसी ने इस ख्याल को माना भी तो सामीय धर्मवालों की तरह वैयक्तिक ईश्वर के रूप में नहीं, बल्कि विश्व-रूप ईश्वर के आकार में।

अज्ञान का दूसरा नाम ही ईश्वर है। हम अपने अज्ञान को साफ स्वीकार करने में शर्माते हैं, अत: उसके लिए संभ्रान्त नाम 'ईश्वर' ढूँढ़ निकाला गया है। ईश्वर-विश्वास का दूसरा कारण मनुष्य की असमर्थता और बेबसी है।

आये दिन हर तरह की विपत्तियों, प्राकृतिक दुर्घटनाओं, शारीरिक और मानसिक बीमारियों की असह्य वेदना सहते-सहते जब मनुष्य बचने का कोई रास्ता नहीं देखता, तब यह कहकर संतोष करना चाहता है कि ईश्वर की यही मर्जी है, वह जो कुछ करता है, अच्छा करता है, वह हमारी परीक्षा ले रहा है, भविष्य के सुख को और भी मधुर बनाने के लिए उसने यह प्रबन्ध किया है। अज्ञान और असमर्थता के अतिरिक्त यदि कोई और भी आधार ईश्वर-विश्वास के लिए है, तो वह है धनिकों और धूर्तों की अपनी स्वार्थ-रक्षा का प्रयास। समाज में होते हजारों अत्याचारों और अन्यायों को वैध साबित करने के लिए उन्होंने ईश्वर का बहाना ढूँढ़ निकाला है। धर्म की धोखाधड़ी को चलाने और उसे न्याय साबित करने के लिए ईश्वर का ख्याल बहुत सहायक है। इस सम्बन्ध में धर्म के प्रकरण में हम कुछ कह आये हैं, इसलिए फिर से उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। ईश्वर का विश्वास एक छोटे बच्चे के भोले-भाले विश्वास से बढ़कर कुछ नहीं है। अन्तर इतना ही है कि छोटे बच्चे का शब्दकोष, दृष्टान्त और तर्कशैली सीमित होती है और बड़ों की कुछ विकसित। बस, इसी विशेषता का फर्क हम दोनों में पाते हैं। एक बार, तीन छोटे-छोटे बच्चों ने मुझसे ईश्वर के सम्बन्ध में बातचीत की। उनकी उमर सात और दस बरस के बीच की थी। पूछा कि ईश्वर कहाँ रहता है, उत्तर मिला – 'आकाश में?' धरती में कहने से प्रत्यक्ष दिखलाने की जरूरत पड़ती, क्योंकि धरती प्रत्यक्ष की सीमा के भीतर है। आकाश अज्ञान की सीमा के अन्तर्गत है, इसलिए वहाँ उसका अस्तित्व अधिक सुरक्षित है। ईश्वर के रंग-रूप के बारे में लड़कों का एक मत न था। कोई उसे अपनी शक्ल का बतलाते थे और कोई विचित्र शक्ल का। "ईश्वर क्या करता है?" – यह सबसे मुख्य प्रश्न था। इसे लड़के भी अनुभव करते थे, क्योंकि जिस वस्तु का आकार प्रत्यक्ष नहीं होता, उसकी सत्ता उसकी क्रिया से सिद्ध हो सकती है। लड़कों ने कहा – "वह हमें भोजन देता है।" और तुम्हारे बाबूजी? – "बाबूजी को ईश्वर देता है।"

"जिस दिन बाबूजी कचहरी में वकालत करने नहीं जाते, उस दिन क्यों नहीं उनके जेब में रुपये आ जाते?" लड़कों को समाज के दुरूह संगठन का उतना पता नहीं होता और जुए के खेल के तरह किस तरह वास्तविक न्याय न करके सौ को हराकर दो को जिताया जाता है, इसका भी उन्हें पता नहीं। इसलिए उन्होंने उस तरह के प्रश्नोत्तर नहीं उठाये। हाँ, उन्हें यह मालूम हो गया कि जहाँ तक खाने-कपड़े, मकान, खेल-तमाशे में खर्च देने का सवाल है, उसका हल माता-पिता और अभिभावकों द्वारा ही होता है। वहाँ ईश्वर की सहायता संदिग्ध-सी जान पड़ती है। लेकिन, जब उससे पूछा गया – "तुम्हें सिरदर्द कौन देता है – माँ-बाप या सगे-सम्बन्धी?" – वे तो विह्वल हो जाते हैं, "अम्मा और बाबूजी क्यों ऐसा चाहेंगे?" वहाँ ईश्वर का हाथ होना उन्हें आसानी से स्वीकार कराया जा सका।

"और पेट दर्द?" – ईश्वर देता है।

"यक्ष्मा से घुला-घुला कर तुम्हारे पड़ोसी को किसने मारा?" – "ईश्वर।"

"सात दिन के बच्चे की माँ को मारकर कौन उसे अनाथ करता है?" – "ईश्वर।"

"माँ के इकलौते बच्चे को मारकर कौन उसे ऐसा विलाप करने को मजबूर करता है जिसे सुन कर पशु-पक्षी और पत्थर तक का हृदय पिघल जाता है?" – "ईश्वर।"

"चैत-वैशाख के दिनों में एक-एक आम के ऊपर दस-दस करोड़ कोड़ों को सिर्फ धूप और हवा में मरने का मजा चखने के लिए कौन पैदा करता है? कौन बरसात के दिनों में धरती पर असंख्य मच्छरों, कीड़ों-मकोड़ों को तड़प-तड़पकर मरने के लिए पैदा करके अपनी असीम दया का परिचय देता है?" –"ईश्वर।"

"तब तो उसमें दया बिल्कुल नहीं। उतनी भी दया नहीं, जितनी कि क्रूर से क्रूर आदमी में संभव हो सकती है। रोते-तड़पते बच्चे को देखकर पत्थर का दिल भी पिघल जाता है। तुम भी उसकी माँ को उस दिन नन्हें बच्चे के मरने पर रोती देखकर अफसोस करते थे कि नहीं?" "मैं भी रो रहा था। कैसा सुन्दर लड़का, उसका गोल-मटोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें और बिना दँतुली के मुँह के हँसते वक्त गालों में पड़े गड्ढे अब भी बड़े सुन्दर याद आते हैं।"

"ऐसे बच्चे को मारने वाला कौन – आदमी या राक्षस?" – "राक्षस से भी खराब।"

पचासवीं पुण्यतिथि के अवसर पर

विश्व-सर्वहारा के महान नेता जोसफ स्तालिन

● अरुण किशोर नवल

इस वर्ष स्तालिन की मृत्यु के पचास वर्ष पूरे हुए हैं। सोवियत संघ में समाजवाद के इस महान निर्माता और विश्व-सर्वहारा के ऐतिहासिक नेता का जन्म 21 दिसम्बर 1879 को और निधन 6 मार्च 1953 को हुआ था। अगले वर्ष दुनिया भर के वर्गचेतन मज़दूर और क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट अपने इस महान पथ-प्रदर्शक की सवा सौवीं जयन्ती मनायेंगे।

स्तालिन के निधन के पचास वर्ष बाद, आज भी पूरी दुनिया के पूँजीपति वर्ग को उनका भूत बुरी तरह सताता रहता है। उनके मीडिया के भोंपू लगातार स्तालिन के खिलाफ ज़हर उगलते रहते हैं। उनके भाड़े के कलमघसीट बुद्धिजीवी स्तालिन को "बर्बर तानाशाह" सिद्ध करने के लिए अनवरत कागज काला करते रहते हैं और नये-नये तथ्य तथा नयी-नयी व्याख्याएँ गढ़ते रहते हैं। ऐसे ही बुद्धिजीवियों को चोले के विश्वप्रसिद्ध वामपंथी कवि पाब्लो नेरूदा ने "पश्चिमी घूरे के मरियल कमीने कुत्तों" की संज्ञा दी थी। स्तालिन को बदनाम करने के इस अभियान में पूरी दुनिया के, और हमारे देश के वे संसदमार्गी नकली वामपंथी भी शामिल हैं जिन्हें संशोधनवादी कहा जाता है और जो उसी ख्रुश्चोव की जारज औलाद हैं जिसने स्तालिन की मृत्यु के बाद कपट और षड्यंत्र का सहारा लेकर रूस में समाजवादी मुखौटे वाली राजकीय पूँजीवाद की स्थापना की थी। यही राजकीय पूँजीवादी ढाँचा अपने अन्दरूनी संकट और पश्चिमी पूँजी के दबाव से पिछली शताब्दी के नवें दशक में विघटित हो गया और सोवियत संघ बिखर गया। ख्रुश्चोव के उत्तराधिकारियों ने सोवियत जनता का बर्बर दमन किया, अपनी कठपुतली सत्ताओं के ज़रिए पूर्वी यूरोपीय देशों की जनता का भी शोषण-उत्पीड़न किया और पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध मदद की आड़ लेकर दुनिया भर के पिछड़े देशों के साथ शोषण और भयादोहन का साम्राज्यवादी रिश्ता कायम किया। तुर्रा यह कि दुनिया के बुर्जुआ अखबार और बुद्धिजीवी संशोधनवादियों के इन कुकर्मों का तोहमत भी स्तालिन के मत्थे मढ़ते हैं। हमारे देश में भी बुर्जुआ मीडिया तो स्तालिन पर लगातार कीचड़ उछालता ही रहा है, इसका श्रेय मुख्यत: संशोधनवादियों को जाता है कि उन्होंने मेहनतकश जनता और आम निम्नमध्यवर्गीय आबादी के भीतर भी या तो स्तालिन के प्रति घटिया पूर्वाग्रह पैदा करने का, या फिर उनकी महान विरासत को धूमिल एवं विस्मृत कर देने का काम किया।

स्तालिन को "आततायी" और "बर्बर तानाशाह" कहने वाले आज इतिहास की इस सच्चाई को छुपाने की हर चन्द कोशिशें करते हैं कि एच.जी.वेल्स, रोम्यां रोलां, बर्नार्ड शॉ, अन्ना लुइसस्ट्रांग, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि बुर्जुआ बौद्धिक जगत में मान्य लेखकों-पत्रकारों ने स्तालिन की सादगी और सरलता की, समाजवाद और जनता के प्रति उनकी निष्ठा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। स्तालिन के काल में सोवियत संघ ने एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका में जारी मुक्ति संघर्षों की जो नि:स्वार्थ मदद की थी, उसके प्रति उन देशों के राष्ट्रीय बुर्जुआ नेताओं ने हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की थी। ऐसे अधिकांश नेताओं ने स्तालिन की ऐतिहासिक महानता को भी खुले दिल से स्वीकार किया था। यह आरोप लाखों बार लगाया जा चुका है कि स्तालिन ने अपने राजनीतिक विरोधियों का "बर्बरतापूर्वक" सफाया करवा दिया। उल्लेखनीय है कि समाजवाद का द्रोही और षड्यंत्रकारी होने के आरोप में बुखारिन, जिनोवियेव, कामेनेव आदि पर जो मुकदमा चला था वह एक खुला मुकदमा था। अदालत में अमेरिका का राजदूत भी मौजूद था, जिसने अपनी एक रिपोर्ट में स्वीकार किया था कि मुकदमे की पूरी कार्रवाई इतनी न्यायपूर्ण और साफ-सुथरी थी, जितनी उसने पहले कहीं नहीं देखी थी।

सोचने की बात है कि दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान, चरम संकट की घड़ी में जब सोवियत संघ की हार सुनिश्चित लग रही थी, उस समय देश की जनता फौलादी दृढ़ता के साथ स्तालिन के साथ खड़ी थी। यदि स्तालिन तानाशाह होना तो दूर, एक अलोकप्रिय शासक भी होते तो कठिन समय में अवश्य ही देश में या पार्टी में बगावत हो गयी होती। सोवियत जनता ने जर्मन फासिस्टों पर जो अविश्वसनीय जीत हासिल की, वह किसी "बर्बर तानाशाह" की रहनुमाई में कतई हासिल नहीं की जा सकती थी। जो वाकई सच्चाई जानना चाहता है उसे बुर्जुआ कुप्रचार के कचरे में दबा दी गयी आधी सदी पुरानी राजनीति विज्ञान और इतिहास की पुस्तकों तथा तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने पलटकर देखना चाहिए। समाजवाद के विरोध में लिखने वाले भी यह स्वीकार करने को विवश थे कि सोवियत संघ में चौथे दशक तक बेरोजगारी, भुखमरी, बेघरों की समस्या, काला बाज़ारी, वेश्यावृत्ति, यौन रोगों आदि का नामोनिशान नहीं था। छोटे-मोटे भ्रष्टाचार के जो इने-गिने मामले सामने आते थे, उन पर कड़ी कार्रवाई होती थी। पूरी जनता को शिक्षा और स्वास्थ्य की समान और नि:शुल्क सुविधा हासिल थी। बूढ़े अपनी संतानों के भरोसे नहीं थे। उनकी जिम्मेदारी राज्य उठाता था। स्त्री-विरोधी अपराध समाप्त प्राय थे और हर तरह के कामों में स्त्रियों की भागीदारी के समान अवसर उपलब्ध थे। गृहयुद्ध और भुखमरी के संकट से निपटने के बाद, सोवियत संघ में समाजवाद ने जब आगे डग भरना शुरू किया, तो ऐतिहासिक दुर्भाग्यवश लेनिन की मृत्यु हो चुकी थी। समाजवादी निर्माण के स्तालिन कालीन दौर में विज्ञान-तकनोलॉजी, उत्पादन, सामाजिक विकास की जो रफ्तार थी, वह अविश्वसनीय थी। उसने औद्योगिक क्रान्ति के दौरान यूरोपीय प्रगति की रफ्तार को भी मीलों पीछे छोड़ दिया। यह चमत्कार किसी तानाशाह के दबाव से नहीं हुआ, बल्कि इसलिए संभव हुआ कि स्तालिन के नेतृत्व में सोवियत समाजवाद ने समस्त उत्पादक जनता की सृजनात्मक ऊर्जा को निर्बन्ध कर दिया था।

बुर्जुआ वर्ग स्तालिन को जब निर्मम बताता है तो उसका कहना एक रूप में ठीक भी है। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को अमली जामा पहनाने वाली समाजवादी राज्यसत्ता का नेतृत्व करते हुए स्तालिन ने समाजवाद के विरोधियों, विध्वंसक तत्वों, षड्यंत्रकारियों और साम्राज्यवादी एजेण्टों से निपटने में हमेशा "लोहे के हाथों" से काम लिया। जनता का खून पीने वाले भेड़िए जब अपने "खोये हुए स्वर्ग" को फिर से हासिल करने के लिए हर चन्द कोशिशें कर रहे थे तो प्रार्थना या समझावन-बुझावन से नहीं बल्कि बज्रदण्ड का इस्तेमाल करके ही उनसे निपटा जा सकता है और समाजवाद की हिफाजत की जा सकती है। स्तालिन की वह बहुचर्चित "निर्ममता" पूरी दुनिया के सर्वहारा वर्ग के लिए अनुकरणीय है। उससे बुर्जुआ वर्ग यदि डरता है और नफरत करता है तो यह सर्वथा स्वाभाविक है। इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता (और इसकी कोई ज़रूरत भी नहीं है) कि समाजवाद के विरोधियों से निपटते समय सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी से स्तालिनकाल में गलतियाँ भी हुईं और कुछ अतिरेक भी हुए (जिसकी ज़िम्मेदारी प्राय: अकेले स्तालिन के मत्थे यूँ मढ़ दी जाती है मानो एक निरंकुश शासक की तरह सब कुछ अकेले उन्हीं के निर्देशों से हो रहा हो)। कई विभ्रमग्रस्त और ढुलमुल बुद्धिजीवी मार्का तत्वों को भी पार्टी ने गलती से समाजवाद-विरोधी षड्यंत्रकारी और प्रतिक्रियावादी की श्रेणी में शामिल कर लिया। समाजवाद का समर्थन करने वाले, लेकिन नीतियों एवं अमल के प्रश्न पर मतभेद रखने वाले कुछ लोग भी इस गलती के शिकार हुए जिससे समाज और पार्टी में स्वस्थ जनवादी माहौल के निर्माण का काम किसी हद तक प्रभावित हुआ। लेकिन ये गलतियाँ किसी किस्म की निर्ममता का नतीज़ा नहीं थीं बल्कि ऐसी स्वाभाविक ग़लतियाँ थीं, जो किसी विराट सामाजिक प्रयोग के दौरान प्राय: होती हैं और महान हस्तियाँ भी इनसे बच नहीं पातीं। यह बुनियादी बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि क्रान्ति कोई दावत या रेशमी कढ़ाई जैसी चीज़ नहीं होती। यह दो वर्गों के बीच लम्बा और जीवन-मरण का युद्ध होता है जिसमें गलतियाँ भी होती हैं और अतिरेक भी। स्तालिन-काल की इन गलतियों का मूल्यांकन करते हुए हमें यह भी याद रखना होगा कि समाजवादी निर्माण का वह पहला प्रयोग लगातार अभूतपूर्व संकट से घिरे रहते हुए हुआ था। साम्राज्यवादी घेरेबन्दी और षड्यंत्रों का सिलसिला लगातार जारी रहा। देश के भूतपूर्व सत्ताधारी प्रतिक्रियावादियों और कुलकों का प्रतिरोध मद्धम पड़ने के साथ ही फासिस्ट जर्मनी के हमले का खतरा सिर पर था और स्तालिन जानते थे कि उसका मुकाबला अकेले ही अपने बूते पर करना था। ऐसे कठिन समय में अन्दर के दुश्मनों से सख्ती से निपटना जरूरी था और इसी प्रक्रिया में कुछ अतिरेक हुए।

दूसरे विश्वयुद्ध में साम्राज्यवादी ताकतें जर्मनी के हाथों सोवियत संघ की तबाही का इंतज़ार कर रही थीं और स्वयं मोर्चा खोलने में जानबूझकर देर कर रही थीं। सोवियत संघ ने अकेले हिटलर की दो सौ डिवीजनों का मुकाबला किया जबकि उसकी मात्र चौवन डिवीजनों ने लगभग पूरे यूरोप को रौंद डाला। दो करोड़ से भी अधिक सोवियत लोगों ने अभूतपूर्व कुर्बानी देकर न केवल समाजवाद की हिफाजत की बल्कि जर्मन नात्सीवाद को नेस्तनाबूद कर दिया। जब तक यह काम हो रहा था तब तक पश्चिमी मीडिया स्तालिन की प्रशंसा करते हुए उन्हें "अंकल जो" कह रहा था और मतलब सधते ही, शीतयुद्ध के दौर में उन्हें राक्षस के रूप में चित्रित किया जाने लगा और सोवियत संघ के विरुद्ध साजिशों का नया सिलसिला जोर-शोर से शुरू हो गया।

बुर्जुआ मीडिया आज इस बात की कोई चर्चा नहीं करता कि नितान्त सादा जीवन बिताने वाले स्तालिन के बच्चे आम नागरिकों के बच्चों के साथ उन्हीं के स्कूलों में पढ़ते थे और उनकी पत्नी भीड़ भरी बसों से सफर करके पढ़ाने जाती थीं। स्तालिन के इकलौते बेटे याकोव को विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनों ने गिरफ्तार कर लिया। वे उसके बदले जर्मन सेना के एक मार्शल की रिहाई का सौदा करना चाहते थे लेकिन उस महान जननायक ने ऐसा करने से साफ इनकार कर दिया। याकोव की जर्मनों ने हत्या कर दी। ऐसी दृढ़ता और कुर्बानी थी स्तालिन की, जिसे बुर्जुआ भाड़े के टट्टू तानाशाह कहकर गाली देते हैं।

स्तालिन की गलतियाँ यदि कुछ थीं तो वे मुख्यत: वैचारिक थीं। वे समाजवादी समाज में वर्ग संघर्ष के नियमों को समझने में विफल रहे। उनकी इस कमी को समझकर ही माओ त्से-तुङ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान आगे का रास्ता उद्घाटित किया।

बुर्जुआ वर्ग रोम-रोम से स्तालिन से नफरत इसलिए करता है कि वह सर्वहारा वर्ग से और समाजवाद से नफरत करता है। वह गालियां वास्तव में स्तालिन को नहीं बल्कि समाजवाद और मज़दूर वर्ग को देता है। अपने दुश्मन के नायक से नफरत स्वाभाविक है। स्तालिन ही वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने मार्क्सवादी विज्ञान को अमली जामा पहनाते हुए इतिहास में पहली बार समाजवाद के निर्माण की रहनुमाई की। अपने ऐसे ऐतिहासिक शत्रु को बुर्जुआ वर्ग न कभी भूल सकता है और न ही माफ कर सकता है। स्तालिन की वैचारिक गलतियों का मूल्यांकन करते हुए भी हमें याद रखना होगा कि वे किसी पिटी-पिटाई लीक पर नहीं बल्कि अचिन्हित राह पर चल रहे थे। उनकी गलतियाँ एक महान वैज्ञानिक और अन्वेषक की गलतियाँ थीं। वे विश्व-सर्वहारा के अप्रतिम नेता थे, हैं और रहेंगे।

स्तालिन के बारे में पूर्वाग्रह पैदा करके, बुर्जुआ वर्ग न सिर्फ समाजवाद को लांछित करता है, बल्कि हमसे हमारे इतिहास की सही समझ छीन लेना चाहता है ताकि हम इतिहास-निर्माण की दृष्टि खो दें और समाजवादी क्रान्ति के उद्यम त्याग दें। लेकिन यह संभव नहीं। स्तालिन की हिफाजत करना समाजवाद की हिफाजत करना है। सर्वहारा वर्ग के सचेत तत्व और सच्चे कम्युनिस्ट स्तालिन को कभी भुला नहीं सकते। उनकी स्मृतियाँ अमिट हैं। उनके प्रति हमारा सम्मान-भाव अक्षुण्य है।

फासिस्टों के रंगरूट

-मक्सिम गोर्की

"अरबों मेहनतकश लोगों पर अपनी सत्ता जमाये रखने और श्रम का निरंकुश शोषण करने की अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए दुनिया के पूँजीपति पूरा जोर लगाकर फासिज़्म का संगठन कर रहे हैं।..."

जिन्होंने भी फासिस्टों की परेडें देखी हैं वे जानते हैं कि ये परेडें उन नौजवानों की होती है जिनकी रीढ़ें रोग से सूजी हुई हैं, किन्तु जो बीमार आदमियों के उन्माद से जीवित रहना चाहते हैं और जो ऐसी किसी भी चीज़ को अपनाने के लिए तैयार रहते हैं जो उनके विषाक्त रक्त की सड़ांध को बिखरने की उन्हें आज़ादी देती है। इन हजारों कान्तिहीन और रक्तहीन चेहरों में स्वस्थ और चमकते चेहरे दूर से ही नज़र आ जाते हैं क्योंकि उनकी संख्या इतनी नगण्य है। निश्चय ही ये थोड़े से चमकते हुए चेहरे सर्वहारा वर्ग के सचेत दुश्मनों के हैं या दुस्साहसी टुटपुंजियों के हैं जो कल तक सोशल डेमोक्रेट थे या छोटे व्यापारी थे और अब बड़े व्यापारी बनना चाहते हैं और जिनके वोट जर्मनी के फासिस्ट नेता किसानों और मज़दूरों के हिस्से की लकड़ी या आलू उन्हें मुफ्त में देकर खरीद लेते हैं। होटलों के हेडवेटर चाहते हैं कि वे अपने-अपने रेस्तरां के मालिक हों, छोटे चोर चाहते हैं कि शासन बड़े चोरों को लूटमार और चोरी करने की जो छूट देता है वह उन्हें भी दी जाय – ऐसे लोगों की पांत में से फासिज़्म अपने रंगरूट भरती करता है। फासिस्टों की परेड एक साथ ही पूंजीवाद की शक्ति और उसकी कमजोरियों की परेड होती है।

"हमें आँखें बंद नहीं कर लेनी चाहिए: फासिस्टों की जमात में मज़दूरों की संख्या भी कम नहीं है – ऐसे मज़दूरों की संख्या जो अभी तक क्रान्तिकारी सर्वहारा की निर्णयकारी शक्ति से बेखबर हैं। हमें अपने आप से यह तथ्य भी नहीं छिपाना चाहिए कि संसार का उपजीवी-पूंजीवाद – अभी भी काफी मजबूत है, क्योंकि मज़दूर और किसान अभी भी उसके हाथ में हथियार और भोजन देते जाते हैं। इस विप्लवी ज़माने का यह सबसे क्षोभजनक और शर्मनाक तथ्य है।"

(सर्वहारा का मानववाद, 1934)

भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु के शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर

"भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुँह पर बैठा रंगरेलियां मना रहा है और शीर्षकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक भड्ड की कगार पर चल रहे हैं।"

(असेम्बली में बम फेंकने के बाद दिल्ली के सेशन जज की अदालत में 6 जून 1929 को दिया गया भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त का ऐतिहासिक बयान)

"समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शीर्षक पूँजीपति हड़प जाते हैं।

... श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है।"

–भगत सिंह

"भारत साम्राज्यवाद के जुए के नीचे पिस रहा है। इसमें करोड़ों लोग आज अज्ञानता और गरीबी के शिकार हो रहे हैं। भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या जो मज़दूरों और किसानों की है, उनकी विदेशी दबाव एवं आर्थिक लूट ने परस्त कर दिया है। भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गंभीर है। उसके सामने दोहरा खतरा है– विदेशी पूंजीवाद का एक तरफ से और भारतीय पूँजीवाद के धोखे भरे हमले का खतरा दूसरी तरफ से है। भारतीय पूँजीवाद विदेशी पूँजी के साथ हर रोज बहुत से गठजोड़ कर रहा है।...

भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की कीमत के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है। इसी कारण मेहनतकश की तमाम आशाएं अब सिर्फ समाजवाद पर टिकीं हैं और देश का भविष्य नौजवानों के सहारे है। वह धरती के बेटे हैं।"

(हिन्दुस्तान सोशिलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का घोषणापत्र)

साम्प्रदायिक दंगों की आग बुझाते हुए शहीद हुए महान पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान दिवस के अवसर पर

...हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को समाप्त करने का एक तरीका है कि ग्राम-संगठन के कार्य को हाथ में लेकर बिना भेदभाव के भारत के दीन किसानों की सेवा की जाये। उसी तरह शहर के मिलों में काम करने वाले लाखों मज़दूरों के संगठनों की भी आवश्यकता है। किसानों और मजदूरों का युग आ गया है। थोथी राजनीति से अब काम नहीं चलेगा।

...दुनिया में कोई भी शाश्वत और अपरिवर्तनीय नैति नियम या धार्मिक सत्य नहीं है। ये दोनों तो इंसी ठोस समाज की रचनाएं हैं। धर्म की राजनीति करने वाली कुटिल ताकतों को विवश होकर अपने पांव समेटने ही होंगे।

...देश की स्वाधीनता के लिए जो उद्योग किया जा रहा था, उसका वह दिन निस्सन्देह, अत्यन्त बुरा था, जिस दिन स्वाधीनता के क्षेत्र में खिलाफत, मुल्ला, मौलवियों और धर्माचार्यों को स्थान देना आवश्यक समझा गया। एक प्रकार से उस दिन हमने स्वाधीनता के क्षेत्र में एक कदम पीछे हटकर रखा था। हमें अपने उसी पाप का फल भोगना पड़ रहा है। देश की स्वाधीनता के संग्राम ही ने मौलाना अब्दुल बारी और शंकराचार्य को देश के सामने दूसरे रूप में पेश कर उन्हें अधिक शक्तिशाली बना दिया और हमारे इस काम का फल यह हुआ कि इस समय हमारे हाथों ही से बढ़ाई इनकी और इनके से लोगों की शक्तियां हमारी जड़ उखाड़ने और देश में मजहबी पागलपन, प्रपंच और उत्पात का राज्य स्थापित कर रही हैं।

नारी सभा

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) के अवसर पर

बहनो! साथियो!!
बताओ लोगों को कि आज के कठिन हालात में
महँगाई-बेरोजगारी, गरीबी-बदहाली, लूट-भ्रष्टाचार
और दमन-उत्पीड़न
–सबके खिलाफ लड़ाई तभी ताकतवर हो सकती है
और जीत तभी हासिल हो सकती है
जब आधी आबादी शेष आधी आबादी को भी बराबरी का दर्जा दे,
अपने साथ ले और सड़कों पर चल रही
जिन्दगी की जद्दोजहद में उसे भी अपना हमसफर बनाये।
बताओ अपने लोगों को कि
जीवन में फैली हर तबाही-बर्बादी की जड़ में
समाज और राजकाज का जो ढांचा है
उसी ढांचे के मालिकों ने–इस समाज के शासकों और उनके
जरखरीद चाकरों ने–बांटा है औरत और मर्द को असमान दर्जे में,
बनाये हैं ऐसे मूल्य और ऐसी ही संस्कृति।
समाज और राजकाज के इस बुनियादी ढांचे को तोड़ने के लिए
जरूरत है औरत-मर्द के बीच खड़ी असमानता की इन बनावटी
दीवारों से भी लगातार टकराने की,
तभी जाकर टूट सकेगा समाज और शासन का यह नरभक्षी ढांचा
और तभी धराशायी हो सकेंगी औरत-मर्द के बीच की
असमानता की दीवारें।

उठो और एकता कायम करो!
एकता कायम करो और संगठित हो जाओ!
संगठित हो जाओ और संघर्ष करो!
संघर्ष करो और दस्तक दो मुक्ति के द्वार पर
शक्ति और ताप भरे अपने अनगिनत हाथों से
एक साथ! एक साथ!! एक साथ!!!

बहनो! साथियो!!
सोचो-समझो और अपनी दिमागी गुलामी की बेड़ियां तोड़ दो,
निराशा की अंधेरी गुफा से
अपने चारों ओर खड़ी निष्क्रियता और ठहराव की लोहे की दीवारों
की कैद से बाहर निकलो, सूरज की रोशनी और जिन्दगी के कोलाहल के बीच,
सदियों से अपने दिलों में दबे ज्वालामुखी को विस्फोट करने दो पूरी ताकत के साथ
प्रचण्ड वेग से बहता जिसका लावा जलाकर राख कर दे
सड़ी-गली रूढ़ियों-रिवाजों-मान्यताओं को
और असमानता और लूट के ढांचे पर टिकी
हमारी हजारों वर्षों पुरानी नारकीय गुलामी की जंग खायी जंजीरों को।
सदियों से दबे अपने गुस्से को भड़क उठने दो,
ऊपर उठने दो उसे सागर के उन्मत्त ज्वार की तरह,
फैलने दो उसे जंगल की आग की तरह इतनी दूर तक कि
वह जा पहुंचे सदियों की दूरी लांघकर नयी सदी की दहलीज पर।

आठ मार्च का दिन आता है बार-बार बहनो!
याद दिलाने हमें हमारी लड़ाई की, हमारे लक्ष्य की और हमारे संकल्पों की।
आलोकित कर रहा है आठ मार्च का प्रकाश-स्तम्भ
हमारा रास्ता
निष्प्रभ नहीं हुई हैं अभी भी
हमारे संघर्षों की ज्वालाओं से प्रज्वलित मशालें,
कभी हो भी नहीं सकतीं।

बहनो आओ! साथियो आओ! आगे बढ़ो!! आगे बढ़ो!!
एक लम्बी और कठिन यात्रा पर रवानगी के लिए जागो!
यात्रा हजारों मील लम्बी है
पर हर लम्बी यात्रा की शुरुआत एक छोटे से कदम से ही होती है।

(पेज आठ से आगे)

तुम्हारे भगवान की क्षय

हाँ, दुनिया में प्राणियों के सुख की घड़ियाँ कम और दुख की अधिक हैं। एक मच्छरों की ही योनि ले ली जाय, तो उसकी संख्या शंख-महाशंख से भी ऊपर चली जायेगी और इस तरह की योनियाँ भी हमारी इस पृथ्वी पर अरबों होंगी। अत्यन्त छोटे, दूरबीन से दिखाई देने वाले कीड़े से लेकर समुद्र की विशाल मछलियों तक अरबों योनियाँ हैं। उनमें अधि

कांश शंख-महाशंख तक प्राणी अपने में रखती है। कहा जाता है कि जो मनुष्य यहाँ, इस लोक में, निकृष्ट कर्म करता है, वही परलोक या परजन्म में इन निकृष्ट योनियों में, दण्ड पाने के लिए पैदा होता है, पर यह बात टिकती नहीं, क्योंकि इस पृथ्वी पर मनुष्य की सारी संख्या डेढ़ अरब के ही आस-पास है। फिर डेढ़ अरब मनुष्यों के पुरबीले कर्म को भोगने के लिए इतनी अधिक संख्या में जीव कैसे पैदा हो सकते हैं? ईश्वर ने इन असंख्य जीवों को सिर्फ यंत्रणा और कष्ट के लिए पैदा करके क्या अपनी कृपा का परिचय दिया है? इन्साफ तो उसमें छू नहीं गया, बल्कि उसके इस कर्म से तो यही पता लगता है कि उससे बढ़कर जालिम और पाषाण-हृदय दुनिया में और कहीं नहीं मिल सकता। शेर भी हिरण का शिकार करता है, अपनी भूख को दूर करने के लिए, छिपकली पतिंगे को दबोचती है, पेट भरने के लिए। सभी जीवधारी दूसरे जीव को आत्मरक्षा और जीवन-धारण के लिए मारते हैं। भरसक तड़पा-तड़पाकर मारना भी पसन्त नहीं करते। लेकिन ईश्वर जिनको मारता है, क्या उनके मांस से वह अपनी भूख शान्त करता है, या आत्मरक्षा के लिए उसे वैसे करना आवश्यक मालूम होता है? इन दोनों के न होने पर सिर्फ खेल के लिए ऐसा घोर कृत्य ईश्वर को क्या बतलाता है?

पद

मनबहकी लाल

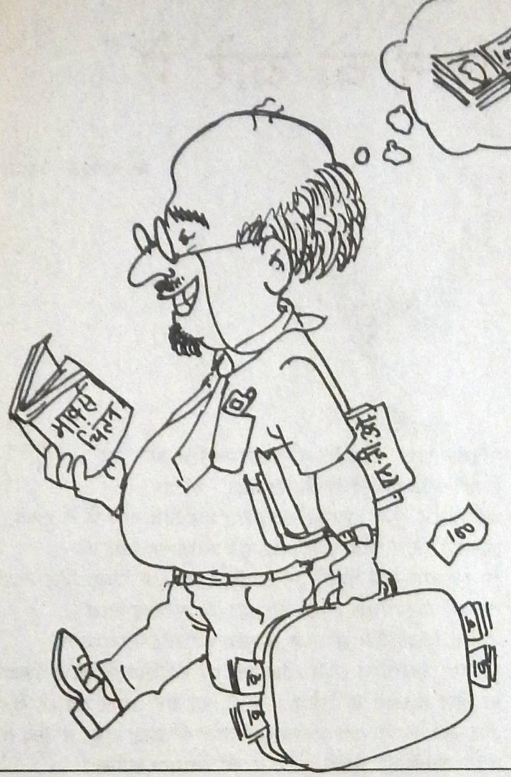

साधो भागे धुनियासार।
जन ने पूछा ज्ञान कहाँ से मिला आपको अपरम्पार।
जीवन के करघे से अथवा पोथी से, बतलाओ यार।
ज्ञानी हो तो राह बताओ, दुःख का नहीं पारावार।
अंधकार की इस सुरंग से कैसे निकलेंगे हम पार।
चिन्तन कर तर माल उड़ाते, लेक्चर देते बारम्बार।
धूल-धुँआ जो फाँक रहे हैं, उनकी किस्मत तारमतार।
अनगढ़-बेढब बातें सुनकर साधु खा गये जन से खार।
ज्ञान भार से लदफद-लथपथ घर को लपके, हो मुर्दार।

वैश्वीकरण, संचार क्रांति और नई विश्व-व्यवस्था

● बिंकटेश्वर प्रसाद

वैश्वीकरण का आशय सामान्य शब्दों में उस आर्थिक नीति से लगाया जाता है जिसका मकसद समूची दुनिया को एक खुली, अवरोध रहित यानी मुक्त अर्थव्यवस्था के अंतर्गत लाना है। दुनिया के किसी भी भाग में बनने वाले सामान के लिए पूरे संसार में बिकने की सुविधा मुहैया कराना हैं। एक ऐसे बाजार की व्यवस्था करना है जिसमें सिर्फ वस्तुएं ही नहीं बल्कि सेवाएं, प्रौद्योगिकी, पूंजी और श्रमिक भी मुक्त रूप से गति कर सकें, किसी राष्ट्रीय सीमा की परवाह किए बिना। इस नई बाजार व्यवस्था का आधार नई प्रौद्योगिकी है जिसे टेलीविजन, कंप्यूटर और इंटरनेट के प्रतीकों में व्यक्त किया जाता है। ये संचार प्रौद्योगिकियां हैं। सूचना-ग्रहण, संकलन, भंडारण और प्रसारण की व्यापक प्रौद्योगिकी इनके मुख्य आधार हैं। इसीलिए आज के युग को संचार क्रांति का युग भी कहा जाने लगा है। 19वीं शताब्दी के अंतिम और 20वीं शताब्दी के आरंभिक चरणों में व्यापार और उद्योग का जो विस्तार हुआ था, उसमें भी संचार प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान था। टेलीग्राफ और काफी हद तक प्रेस की भूमिका को भी कम करके नहीं आंका जा सकता पर वैश्वीकरण तो संचार क्रांति के कारण ही संभव हो पाया है। भारत इसका बढ़िया उदाहरण है जहां पिछले दो दशकों में जनसंचार माध्यमों का जबर्दस्त विकास हुआ है। इसी दौरान यहां मुक्त अर्थव्यवस्था का रास्ता भी अपनाया गया।

वैश्वीकरण के विस्तार के साथ कई मिथक जुड़े हैं। मुक्त अर्थव्यवस्था के मायने समतामूलक आर्थिक व्यवस्था होगी। विकसित देश विकासशील और कम विकसित देशों पर अपनी इच्छा और अपने पक्ष में जाने वाली आर्थिक नीतियां नहीं थोप सकेंगे। संरक्षणवाद खत्म होगा और अंतरराष्ट्रीय व्यापार संबंधों में भेदभावपूर्ण व्यवहार समाप्त होंगे। विकसित देश नए बाजार ढूंढ़ने में अल्प विकसित देशों की मदद करेंगे। एकीकृत अर्थव्यवस्था की प्रगति के जरिए रोजगार के अवसर पैदा होंगे। श्रमिकों को पूरी दुनिया में कहीं भी काम नहीं मिल सकेगा। श्रम मानदंड लागू होंगे। श्रमिकों का शोषण बंद होगा। वैश्वीकरण से व्यापक विश्व की आम जनता का जीवन-स्तर सुधारा जा सकेगा। ये और इन जैसे न मालूम कितने वादे किए गए थे।

अब जरा देखें कि इस वैश्वीकरण की वास्तविकता क्या है। बाजार हितैषी दिशा में आर्थिक सुधार, राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप की अवधारणा, राज्य द्वारा नियंत्रण और नियोजन की अवमानना, पूंजी, टेक्नोलॉजी और कुशल व प्रोफेशनल कामगारों के एक देश से दूसरे देश में संचरण पर बंदिशों को हटाने और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा राष्ट्रीय राज्य के प्रभुत्व को नकार कर अपने प्रभुत्व को स्थापित करने का अभियान-इन सबने संयुक्त रूप से पुराने राष्ट्रवादी अर्थतंत्र और नीति के सभी स्तंभों को एक के बाद एक ध्वस्त करते हुए एक नई खुली वैश्विक अर्थव्यवस्था की घोषणा की है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को तेजी से वैश्विक अर्थव्यवस्था में बदलते चले जाने से हम ऐसी स्थिति की तरफ बढ़ रहे हैं जहां पूंजी अत्यंत चलायमान है लेकिन मजदूर अचल है। एक अनुमान के मुताबिक वित्तीय पूंजी के अंतरराष्ट्रीयकरण के कारण प्रतिदिन डेढ़ से दो लाख करोड़ डालर की पूंजी वित्तीय बाजार में आती जाती है लेकिन इस पूंजी के आवागमन का लाभ तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को नहीं मिलता। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नोम चॉम्स्की का कहना है कि जिसे वैश्विक बाजार कहा जा रहा है उसका 40 फीसदी हिस्सा बड़ी-बड़ी कंपनियों के समान का आंतरिक लेन-देन भर है। मिसाल के लिए अमेरिका से मैक्सिको को किया गया आधे से ज्यादा निर्यात वहां के बाजार तक पहुंचता ही नहीं है। चीजों को अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की एक शाखा से दूसरी शाखा में स्थानांतरित भर किया जाता है क्योंकि सीमा पार मजदूरी कहीं ज्यादा सस्ती है और पर्यावरण की तरफ से लापरवाह रहा जा सकता है।

विश्व बैंक उन संस्थाओं में अग्रणी है जिन्हें वैश्वीकरण का झंडाबरदार माना जाता है। उसी विश्व बैंक ने 2000-01 की 'विश्व विकास रिपोर्ट' में माना है कि 80 के दशक के मुकाबले 90 के दशक में गरीबी घटने की बजाय बढ़ी है। मुक्त बाजार की सैद्धांतिकी से परिचालित वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने संपत्ति के केन्द्रीकरण यानी संपत्ति और आय के कुछ ही हाथों में सिमटने और दूसरी ओर गरीबी के विस्तारीकरण को तेज किया है। दुनिया की 135 बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐसी हैं जिनमें से हरेक का सालाना कारोबार 10 अरब डालर यानी करीब 50 हजार करोड़ रुपये से ज्यादा है जबकि दुनिया में 60 देश ऐसे हैं जिनमें से प्रत्येक का सकल घरेलू उत्पाद इससे कम है।

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के मुताबिक भी अमीर और गरीब देशों के बीच की खाई चौड़ी हुई है। अमीरी और गरीबी को मापने वाले मानदंडों के मुताबिक 20 अमीर देशों की औसत आय 20 गरीब देशों की औसत आय के मुकाबले तकरीबन 37 गुना ज्यादा है। विकसित देशों की 20 फीसदी आबादी के हिस्से में उपभोग व्यय का 86 फीसदी हिस्सा आता है जबकि दुनिया की सबसे गरीब 20 फीसदी आबादी के हिस्से में केवल 1.3 फीसदी। एक औसत अफ्रीकी परिवार को उपभोग के लिए 25 साल पहले जितना हिस्सा मिलता था, आज उससे 20 फीसदी कम मिलता है। उपभोक्ता सामग्रियों का जो ढेर पूंजीपति देशों में दिखाई दे रहा है, उसमें दुनिया के सबसे गरीब 20 फीसदी लोगों का कोई हिस्सा नहीं है। वास्तव में लगभग सवा सौ करोड़ लोग बुनियादी उपभोग की वस्तुओं से भी वंचित हैं।

गरीबी की अंतरराष्ट्रीय परिभाषा के मुताबिक वे सारे लोग गरीब हैं, जिनका प्रतिदिन का खर्च एक डालर से कम है। इस मानक को अगर भारतीय संदर्भ में देखें तो गरीबी रेखा से नीचे आने से बचने के लिए एक व्यक्ति को प्रति महीने कम से कम 1440 रुपए खर्च करने होंगे। अब अगर राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के 1999-2000 के आंकड़ों को देखें तो ग्रामीण भारत में अधिकतम खर्च करने वाला समूह वह है जिसमें हर व्यक्ति प्रति महीने 950 रुपए या इससे ज्यादा खर्च करता है। इस समूह में ग्रामीण भारत की केवल पांच फीसदी आबादी आती है। मतलब यह है कि भारत की 95 फीसदी से ज्यादा ग्रामीण आबादी अंतरराष्ट्रीय गरीबी रेखा के नीचे जी रही है। शहरी इलाकों की करीब 80 फीसदी आबादी इस मानक से कम पर गुजारा कर रही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि विकसित पूँजीवादी देशों में दुनिया की लूट का माल सबको मिल रहा है और वैश्वीकरण का नुकसान विकासशील देशों में सबको भोगना पड़ रहा है। पूँजीवादी देशों के सिरमौर अमेरिका में भी पूँजी का उतना ही खतरनाक संकेंद्रण है जितना दुनिया के किसी भी अन्य भाग में। वहां की कुल वित्तीय संपत्ति का 94 फीसदी सिर्फ 20 फीसदी लोगों के पास है और उनमें भी एक फीसदी के पास 48 फीसदी हिस्सा है। अमेरिका की 200 सबसे बड़ी कंपनियों के पास कुल उत्पादकीय परिसम्पत्तियों का 60 फीसदी हिस्सा है। भारत में भी देश की छह फीसदी धनी आबादी 60 फीसदी संसाधनों का उपभोग करती है जबकि 80 फीसदी आबादी के हिस्से में सिर्फ 20 फीसदी संसाधन ही आते हैं।

दुनिया के हालात इस बात के सूचक हैं कि यह दो हिस्सों में बंटी है। दुनिया का पहला हिस्सा वह है जो अमीर है, खुशहाल है और जिसका उत्पादन के साधनों पर अधिकार है। दूसरा हिस्सा गरीब है, बदहाल है और उसका उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण भी नहीं है। दुनिया का यह बंटवारा संचार के क्षेत्र में भी साफ तौर पर दिखाई देता है। संचार के साधनों पर भी अधिकार उसी वर्ग का है जिसका उत्पादन के दूसरे साधनों पर अधिकार है। यही बात देशों पर भी लागू होती है।

अगर संचार प्रौद्योगिकी की बात करें तो इस पर विकसित देशों का एकाधिकार है। यूनेस्को की मैकब्राइड कमेटी की रिपोर्ट में इसका विस्तृत हवाला दिया गया है। इसके मुताबिक दुनिया के 80 फीसदी समाचारों, फीचर लेखों और अग्रलेखों पर चार विशालकाय समाचार एजेंसियों का कब्जा है। एशिया और अफ्रीका के कुछ देशों के पास तो अपनी समाचार एजेंसियां ही नहीं है और जिनके पास हैं भी, उनके पास इतने संसाधन नहीं है कि वे विश्व पैमाने पर वैसा नेटवर्क कायम कर सकें जैसा पश्चिमी पूंजीवादी देशों की समाचार एजेंसियों के पास है। संचार प्रौद्योगिकी के स्तर पर तीसरी दुनिया के देश काफी हद तक विकसित पूंजीवादी देशों पर निर्भर हैं। संचार के क्षेत्र में जिस नई प्रौद्योगिकी का प्रवेश हुआ है उसने यह निर्भरता और बढ़ा दी है।

(अगले अंक में जारी)

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2001

स्तालिन की पचासवीं पुण्यतिथि के अवसर पर एक कविता

सोवियत संघ और स्तालिन के बारे में

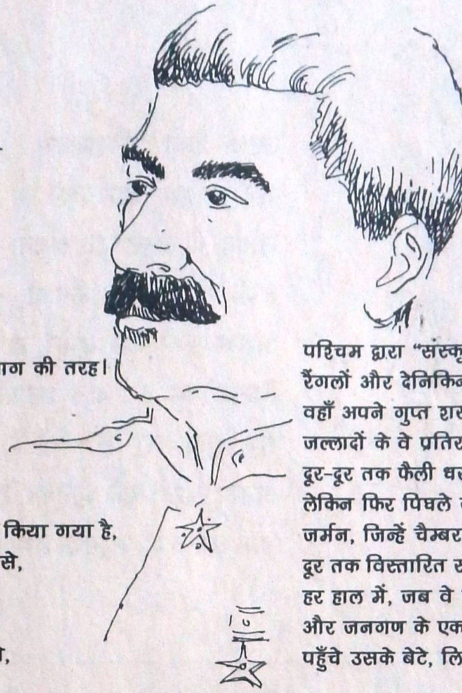

● पाब्लो नेरूदा

सोवियत संघ, जो खून बहा
तुम्हारे संघर्षों में,
जो तुमने दिया एक माँ के रूप में इस दुनिया को
ताकि मरती हुई आज़ादी जिन्दा रह सके,
यदि हम इकट्ठा कर सकते वो सारा खून,
तो हमारे पास एक नया सागर होता
दूसरे किसी भी सागर से अधिक बड़ा
दूसरे किसी भी सागर से अधिक गहरा
तमाम नदियों की तरह स्पन्दित
और सक्रिय, अराउकेनियन ज्वालामुखियों की आग की तरह।

अपने हाथ डुबाओ इस सागर में,
हर देश के लोगो,
फिर बाहर निकाल लो और डुबो दो इसमें
वह सब कुछ जो भुला दिया गया है, जिसे लांछित किया गया है,
झुठलाया गया है और कलंकित किया गया है जिसे,
उन सबको, जो पश्चिमी घूरे के
सैकड़ों छोटे-छोटे कुत्तों में शामिल हो गये हैं
और तुम्हारे रक्त को अपमानित किया है जिन्होंने,
ओ मुक्त लोगों की माँ!

प्राचीन क्रेमलिन के तीन कमरों में
जोसेफ स्तालिन नामक एक आदमी रहता है,
बत्तियाँ उसके कमरे की, देर रात गये बुझती हैं
दुनिया और उसका देश उसे आराम नहीं करने देता।
दूसरे वीर एक देश को अस्तित्व में लाये,
उससे आगे, उसने उसे सँजोया,
और उसका निर्माण किया
और उसकी हिफ़ाज़त की।

उसकी विशाल धरती, इसलिए, उसका हिस्सा है,
और वह आराम नहीं कर सकता
क्योंकि वह धरती आराम नहीं करती।
दूसरे वक्तों में बर्फ और बारूद ने पाया उसे
पुराने लुटेरों का मुक़ाबला करते हुए
जो फिर से ज़िन्दा करना चाहते थे
कोड़ा और दुःख, भूदासों का संताप,
करोड़ों विपन्नों की प्रसुप्त पीड़ा।

पश्चिम द्वारा "संस्कृति की रक्षा" के लिए भेजे गए
रैंगलों और देनिकिनों के ख़िलाफ़ था वह।
वहाँ अपने गुप्त शरण्यों से वंचित कर दिये गये थे वे लोग,
जल्लादों के वे प्रतिरक्षक, और पूरे सोवियत संघ की
दूर-दूर तक फैली धरती पर स्तालिन ने काम किया दिन-रात।
लेकिन फिर पिघले सीसे की लहर के मानिन्द आये
जर्मन, जिन्हें चैम्बरलेन ने बनाया था मोटा-तन्दुरुस्त।
दूर तक विस्तारित सभी सीमान्तों पर स्तालिन ने मोर्चा लिया उनसे
हर हाल में, जब वे पीछे हट रहे थे, या चाहे आगे बढ़ रहे थे,
और जनगण के एक प्रचण्ड झंझावात की तरह सुदूर बर्लिन तक
पहुँचे उसके बेटे, लिये हुए रूस की व्यापक शान्ति।

वहाँ मोलोतोव और वोरोशिलोव भी हैं,
मैं देखता हूँ उन्हें, दूसरे आला जनरलों के साथ,
दुर्दम्य हैं जो।
बर्फ से ढँके शाह-बलूत के झुण्डों की तरह दृढ़।
महल नहीं हैं इनमें से किसी के पास।
किसी के भी पास नहीं हैं गुलामों की रेजिमेण्टें।
धनी नहीं बना इनमें से कोई भी युद्ध के जरिए,
खून बेंचकर।
इनमें से कोई भी मोर की तरह
रियो डि जेनेरियो या बगोटा की यात्रा नहीं करता
क्षुद्र क्षत्रपों और खून के धब्बों से सजे जालिमों को निर्देश देने के लिए।
उनमें से किसी के भी पास नहीं हैं दो सौ सूट,
हथियार कारख़ानों में किसी की भी हिस्सेदारी नहीं है
और उनमें से सभी की हिस्सेदारी है
आह्लाद में और उस विशाल देश के निर्माण में
जहाँ भोर की अनुगूँजें प्रतिध्वनित होती हैं
मौत की रात से उठती हुई।

उन्होंने दुनिया से कहा, "कामरेड!"
उन्होंने बढ़ई को राजा बनाया।
इस सुई की आँख से कोई ऊँट नहीं गुजरेगा।
उन्होंने गाँवों की साफ-सफाई की,
ज़मीन का बँटवारा किया,
भूदास को ऊपर उठाया,
भिखमंगे को मुक्ति दी,
नृशंस का नाश किया।
गहरी रात में रोशनी लेकर आये वे...

(एक लम्बी कविता का अंश)

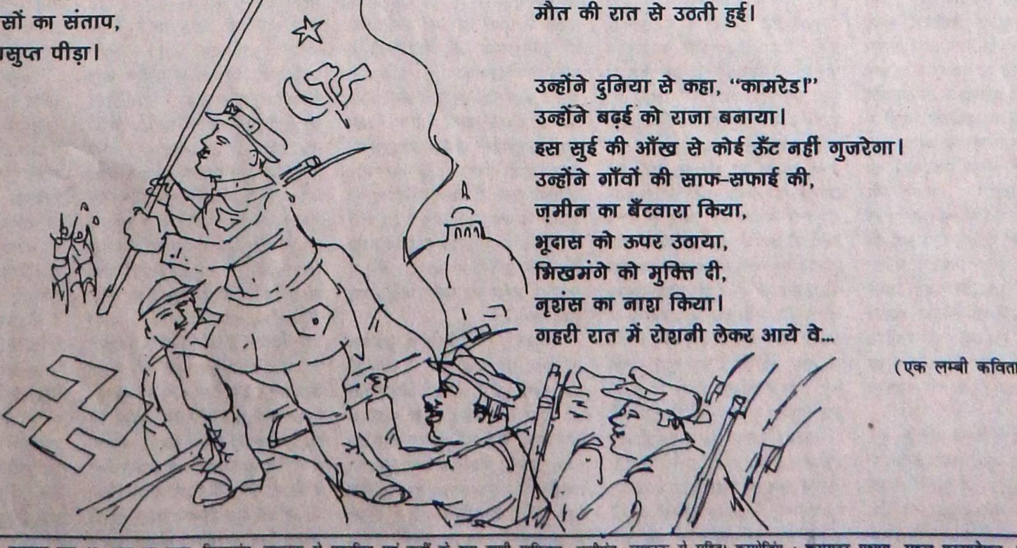

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।